चन्दामामा
माँ-बच्चों का मासिक पत्र

Photo by C. F. Patel

पुरस्कृत परिचयोक्ति

कहाँ हो तुम ?

प्रेषिका
कु. इन्दिरा स. मंजेश्वर, जलगाँव

बचपन से ही दांत साफ़ करने का अभ्यास कराना माता-पिता का प्रमुख कर्तव्य होना चाहिये। बच्चों के छोटी अवस्था का यह अभ्यास दिनचर्या का विषय बन जाता है व थोड़ी सावधानी रखने से जीवन भर दांत के व्याधियों से छुटकारा मिल जाता है—
नीम टूथ पेष्ट
ट्रेड "कैलकेमिको" मार्क
नियमित व्यवहार करने से दांत मजबूत सुन्दर और चमकीले होते हैं तथा हर प्रकार के दन्तरोगों से सुरक्षित रखता है.
Neem
TOOTH · PASTE
नीम
टूथ पेष्ट
दि कैलकटा केमिकल कं. लि. १५, पंडितिया रोड, कलकत्ता-२९.
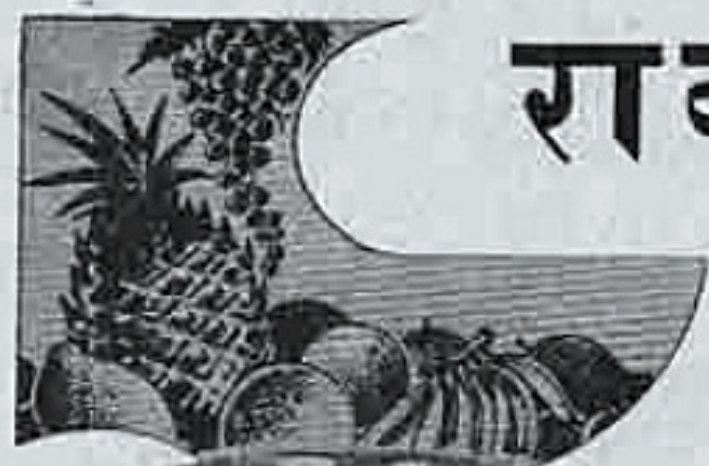
रावलगांव
ग्लूकोज, प्युअर दूध और शुद्ध शक्कर से बनाई हुई और बगैर हस्तस्पर्श किए बिना मशीन में ही पैक की हुई भरपूर विटॅमिनयुक्त "रावलगांव" मिठाइयाँ व टाफियाँ पिछले दस बरस से सर्वत्र प्रसिद्ध है। मुफ्त उपहार कॅटलॉग के लिए लिखिए।
नेमिचन्द पारसमल ॲण्ड कम्पनी
१२८-ए नैनिअप्पा नाईक स्ट्रीट
मद्रास-३

बिड़ला
कटेली चम्पा
केश तैल
अनुपम गन्ध
एवं केश शोभा
केलिये
वीर-बच्चा
बच्चों की ताकत के लिये
अनुपम टानिक
VEER BACHHA
बिड़ला लेबोरेटरीज, कलकत्ता-२०

चन्दामामा
संचालक :
' चक्रपाणी '
स्वामी विवेकानन्द के स्वभाव को देख कर
समस्त संमार ने दाँतों तले उँगली दबा ली थी।
वह श्रीरामचन्द्र के परम भक्त थे। 'मिठाई' वाली
हकानी पढ़ लीजिए। कितनी ही अद्भुत घटनाएँ
उनके जीवन में घटी थीं। एक दिन स्वामीजी
किसी जङ्गल में घूमते हुए आराम करने के लिए
एक पेड़ के नीचे बैठ गए। सहसा एक भयङ्कर बाघ
वहाँ आ निकला, और स्वामीजी के सामने ही कुछ
गज़ों की दूरी पर बैठ गया। स्वामीजी ज़रा भी
विचलित नहीं हुए। जाने बाघ ने क्या सोचा, थोड़ी
देर के बाद. उठ कर अपनी राह चला गय।
स्वामीजी विस्मित रह गए!
वर्ष 5 : दिसम्बर 1953 : अङ्क 4

चूहे की कहानी

बच्चो ! एक बार हाथी ने
गैंडे को ललकारा—
'रे ! मैं हूँ जङ्गल का राजा,
तू गैंडा बेचारा !'

बस, अब रार मची इतने में
इक सियार भी आया ।
'श्री गणेश के वाहन मूषिक
आते लो ; चिल्लाया ।

शीस उठा देखा दोनों ने
फहरा श्वेत पताका ।
हाथ गदा ले उतरा भू पर
मूषिक वाहन बाँका ।

'देव गजानन ने मुझ पर कर
कृपा इन्हें है भेजा ।'
पाठ पढ़ाएँ गैंडे को—
यों हाथी ने सोचा ।

लेकिन मूषिक राम जरा भी
देर वहाँ नहीं सुस्ताए ।
चलने लगे वहाँ से जल्दी
बस, जैसे ही आए ।

'वैरागी'

तब हाथी ने पूछा—'भैया !
'क्या श्री गणेश जी ने—
तुम को भेजा नहीं यहाँ पर
मदद मुझे ही देने ?'

बोले मूषिक राम—'अरे यह
सुना न, झगड़ा कैसा ?
स्वयं देवता हाथ बँटाए
है यह झगड़ा ऐसा !'

बोला हाथी—'वाह ! भई यह
भी कैसी नाराजी !
फिर आए क्यों, जरा बता दो,
क्यों कर हो भगवान जी ?'

दो चींटों में हुई लड़ाई
तिनका एक मिला जब—'
बोले मूषिक राम—'देवता
ने मुझ को भेजा तब।'

कह मुसकाता हुआ वहाँ से
चला गया वह मूना।
अन्य देवता की सन्निधि में
छुटपन, बड़पन कैसा ?

मुख-चित्र

द्रोणाचार्य धनुर्विद्या में अत्यन्त निपुण और बेजोड़ थे। उनके पास अनेकराजकुमार इस विद्या का अभ्यास करते थे। कौरव पांडव भी इन्हीं के शिष्य थे।

द्रोणाचार्य के शिष्यों में सब से प्रवीण थे कर्ण और अर्जुन। लेकिन कर्ण कौरवों का पक्षपाती था, इस लिए वह कभी-कभी अर्जुन के साथ मखौल कर बैठता था। लेकिन अर्जुन में ऐसा कोई राग-द्वेष का भाव नहीं था। इसलिए गुरु द्रोण उसे बहुत प्यार करते थे। द्रोणाचार्य बाण-विद्या की प्रतिस्पर्द्धा में अपने शिष्यों को भी शामिल कर लेते थे। उन प्रतिस्पर्द्धाओं में अक्सर अर्जुन ही विजयी हुआ करता था! इससे गुरु-पुत्र अश्वत्थामा को भी पांडवों से ईर्ष्या होने लगी।

ईर्ष्या वश उसने अपने रसोइया को आदेश दे दिया, कि अर्जुन को हमेशा अँधेरे में ही खाना दिया करे। उसकी आज्ञा के अनुसार रसोइया हमेशा अर्जुन को अँधेरे में ही खाना खिलाया करता था।

एक दिन जब सब लोग भोजन कर रहे थे, तो सहसा आँधी आ गई और भोजन सभा का दीप बुझ गया। लेकिन अर्जुन को तो इसकी आदत थी ही, वह मजे से अँधेरे में ही खाता रहा। यों भोजन करते हुए उसे एक बात सूझ गई–'क्यों न अँधेरे में बाण-विद्या का भी अभ्यास किया जाय!' उस दिन से अर्जुन अँधेरे में अभ्यास करने लगा। एक दिन जब वह रात में निशाना लगा रहा था, कि उसकी आवाज गुरु जी के कानों मे पड़ी और गुरु जी जाग पड़े।

उठ कर देखा, तो अपने प्रिय शिष्य को ऐसी साधना करते हुए पाकर अत्यन्त आश्चर्य चकित रह गए। उन्होंने जाकर अर्जुन को छाती से लगा लिया, और फिर उसके सिर पर हाथ रख कर कहा—'अर्जुन, मैं तुम्हें धनुर्विद्या में ऐसा निपुण कर दूँगा, कि दुनियाँ में तुम्हारी बराबरी करने वाला कोई नहीं रह जाएगा!' अपनी प्रतिज्ञा के अनुसर द्रोणाचार्य ने अर्जुन को ऐसे प्रेम से बाण-विद्या सिखाई, उसके समस्त रहस्यों मे उसे ऐसा पण्डित बना दिया, कि सचमुच वह दुनियाँ का बेजोड़ धनुर्धर बन गया।

महात्मा ईसा

पुराने जमाने में 'बेतुलहम' नामक एक गाँव के पास कुछ गड़रिए के लड़के भेड़ें चरा रहे थे। एक दिन रात में उनको आसमान के एक कोने में एक बड़ा तारा दिखाई पड़ा। उसे देख कर वे लोग आश्चर्य और भय में पड़े हुए थे कि वहाँ एक देव-दूत आकाश से उतरा और उनके सामने आकर खड़ा हो गया।—

'बच्चो! डरो मत! हम सबों के देवाधि-देव ईसू क्रिस्ट अभी अवतरित हुए हैं! इसीलिए वह बड़ा सितारा इस तरह चमक उठा है!' यह कह कर वह देव-दूत अदृश्य हो गया।

वह सितारा और भी बहुत-से लोगों का दीख पड़ा था। उसे देखने वालों में तीन बड़े-बड़े ज्ञानी भी थे। दुनियाँ का उद्धार करने वाले ही यह महात्मा ईसू क्रिस्ट पैदा हुए हैं: यह बात उन्होंने जाकर अपने राजा 'हीरोद' को कह सुनाई! 'ईसू क्रिस्ट कहाँ पैदा हुए हैं! जाकर आप लोग पता लगाइए, तब मैं आकर दर्शन करूँगा!'—हीरोद ने उनसे कहा। फौरन वे तीनों ज्ञानी महात्मा ईसा की खोज में निकल पड़े। राजा हीरोद ने ज्ञानियों से ऐसा कह तो दिया, लेकिन सच पूछो तो उसके दिल में महात्मा ईसा के प्रति कोई भक्ति-भाव नहीं था। वह बड़ा ही क्रूर आदमी था। महात्मा ईसा को देखने जाने में उसका उद्देश्य था, कि उस दिव्य शिशु का काम तमाम कर दे!

ग्वाल-बाल को साथ लेकर वे तीनों ज्ञानी उस ओर चल पड़े जिधर वह बड़ा तारा चमका था। तीनों कुछ रोज यों चलते रहे; आखिर वे एक सराय में पहुँचे। उसी समय कुछ पहले ईसा की माँ 'मेरी' और पिता जोसफ़ वहाँ आकर ठहरे हुए थे। लेकिन

सराय में भीड़ ज्यादा होने के कारण ईसू के माँ-बाप को वहाँ पर कोई जगह न मिल सकी; वे लोग वहीं एक अस्तबल में ठहर गए! महात्मा ईसा वहीं पैदा हुए!

तीनों ज्ञानियों ने शिशु-रूप में महात्मा ईसा को देखा, और देखते ही तन्मय हो गए। फिर उन्होंने उस दिव्य शिशु को साष्टांग प्रणाम किया। लेकिन उन ज्ञानियों ने हीरोद से जाकर महात्मा ईसा के दर्शन करके आने की बात नहीं कही, क्योंकि उन्हें मालूम था, कि अगर ये लोग कह देंगे, तो वह उस बच्चे को मार डालेगा।

वहाँ हीरोद इन ज्ञानियों की राह देखता रहा और जब उन में से कोई नहीं लौटा, तो उसने सोचा—'अरे यह तो मुझे धोखा दिया गया!' वह उत्तेजित हो उठा। उसने तुरत अपने सैनिकों को बुला कर कहा—'तुम लोग कई भागों में बँट जाओ और समस्त राज्य में घूम कर देखो—जहाँ छोटे बच्चे मिलें, सबों को मार डालो! इस सामोहिक शिशु-हत्या कराने में हीरोद का मतलब यह था कि जब सब बच्चे मार डाले जाएँगे, तो उनमें ईसा भी खतम हो जाएगा!—

इधर राजा हीरोद इस तरह आतुर हो रहा था! उधर ईसा के जन्म-स्थान में एक विचित्र घटना घटी! जोसफ़ ने स्वप्न में देखा कि एक देवता आकर उससे कह रहे हैं—'तुम्हारे घर में जो यह बच्चा पैदा हुआ है, वह लोक का उद्धार करने आया है। लेकिन इसकी जान खतरे में है! इसलिए तुरत इसको हटा ले जाओ किसी दूसरी जगह!' इतना कह कर वे देवता अदृश्य हो गए! यों जोसफ़ अपने बच्चे और उसकी माँ को लेकर मिश्र देश में चला गया। हीरोद की मृत्यु तक वे लोग वहीं छिप कर गुजर-बसर करते रहे।

अब कोई डर नहीं ! बच्चे का ग्रह दूर हो गया ! यह साहस आते ही जोसफ़ अपने परिवार को लेकर 'नज़रत' नामक एक जगह में चला आया। ईसू क्रिस्ट वहीं सयाने हुए। लड़कों के साथ वे पाठशाला जाते और अपने पिता की बढ़इगीरी के काम में मदद भी करने लगे।

देखने में ईसू क्रिस्ट दूसरे बच्चों के समान ही लगते थे, लेकिन बुद्धि में बृहस्पति थे। कैसा भी पण्डित उनके सामने आकर कठिन-से-कठिन प्रश्न करे, तो बड़ी आसानी से वे सब को रुचने वाला सुन्दर जवाब दे देते थे !

एक दिन ईसू क्रिस्ट को लेकर माँ-बाप कहीं यात्रा करने चले गए। लेकिन घर लौटते समय लड़का न जाने कहाँ गायब हो गया। तीन दिन तक माँ-बाप व्याकुल होकर रात-दिन उसे खोजते रहे।

ईसू क्रिस्ट का देश-भ्रमण शुरू हो गया ! जहाँ-जहाँ वे गए लोगों में प्रेम-मन्त्र का उपदेश उन्होंने दिया। उनके प्रेमोपदेश को सुन कर लोग मुग्ध हो जाते और उनके अनुयायी बन जाते थे ! उस महात्मा ने अपने देश-भ्रमण में जाने कितने अंधों को दृष्टि प्रदान की, जाने कितने कोढ़ियों को चङ्गा किया और जाने कितने लोकोपकारक चमत्कार कर दिखाए ! महात्मा ईसा का उपदेश मछुओं के लिए, व्यापारियों के लिए और मामूली काम करके जीने वालों के लिए एक समान लाभदायक सिद्ध हुआ। महात्मा ईसा जहाँ जाते थे, भीड़-की-भीड़ जमा हो जाती थी और देह की सुधि बिसार कर उनके उपदेश सुनते रहते थे। इस प्रकार इनका बढ़ता हुआ प्रभाव देख कर कुछ लोगों के मन में उनके प्रति ईर्ष्या पैदा हो गई !

चाहे जैसा भी समय हो, दुनियाँ में कभी दुष्टों की कमी नहीं रही। महात्मा ईसा जो उपदेश देते थे, वह कुछ दुष्टों को पसंद नहीं पड़ा! उन लोगों ने जाकर राजा के कान भरे और राज-परिवार महात्मा ईसा के धर्म-प्रचार के विरुद्ध खड़ा हो गया। उन लोगों ने महात्मा ईसा को क्रूस पर चढ़ा कर मार डालने की भी तैयारी कर ली! उन देखते-देखते उन लोगों ने उन्हें क्रूस पर खड़ा करके उनके दोनों हाथ फैला दिए और कीलें ठोंक दीं! लेकिन महात्मा ईसा को उनके ऊपर ज़रा भी गुस्सा नहीं आया; अंत तक वे उन्हें प्रेम का संदेश ही सुनाते रहे!

सूली पर चढ़ने के तीसरे दिन महात्मा ईसा ने अपने शिष्यों के सामने प्रत्यक्ष हो, उन्हें अपना संदेश दिया—'अपने जानी-दुश्मनों से भी हमें बदला लेने की भावना नहीं रखनी चाहिए!'—

इस प्रकार महात्मा ईसा को सूली चढ़ाने का एक और भी कारण था! ऐसा कहा जाता है कि भगवान ने महात्मा ईसा को सब प्रकार की महिमाएँ प्रदान की थीं, लेकिन सिर्फ प्राण देने का अधिकार नहीं दिया था! लेकिन महात्मा ईसा ने भगवान की बात भूल कर एक प्राणी को प्राण दे दिया था—इसलिए उन्हें यह सज़ा भोगनी पड़ी!

महात्मा ईसा ने जो धर्मोपदेश किया था, वही आज ईसाई-धर्म के नाम से प्रसिद्ध है। महात्मा ईसा केवल धर्म-प्रचारक ही नहीं थे, वे एक युग-निर्माता भी थे! उनके नाम से जो संवत चला, वही ईसवी-सन आज सारी दुनियाँ में प्रचलित है!

सूली पर चढ़े हुए महात्मा ईसा का रूप ही ईसाई-धर्म का प्रतीक बन गया और प्रत्येक ईसाई उस चिन्ह को धार्मिक-भावना से अपने पास रखना अपना कर्तव्य समझता है!
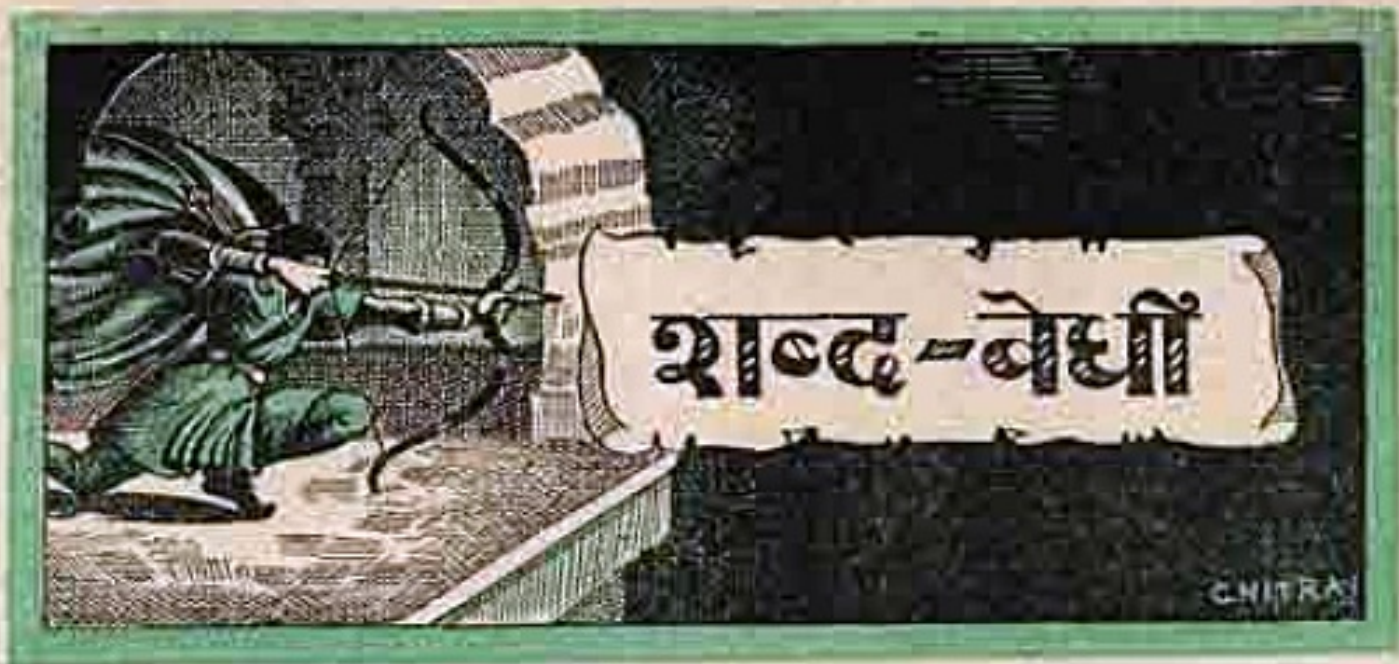
[विजयवर्मा और नाथूसिंह संन्यासी का वेश धारण कर भीमवर्मा के डेरे पर आते हैं। वहाँ उन्हें मालूम होता है कि करुणा की शादी कबन्धवर्मा नाम के एक बूढ़े आदमी से होने जा रही है।— चण्डीदास को दूत द्वारा यह खबर भेज कर बरात के साथ, रहस्यरूप से, दोनों जङ्गल के मन्दिर की ओर चले आते हैं। उसके बाद पढ़िए]

आधे घण्टे में बरात उस जङ्गल के मन्दिर में पहुँची। शादी के समय भीमवर्मा का प्राण-प्रिय मित्र सोमशर्मा पुरोहिताई करेगा— यह बात विजयवर्मा को तब तक मालूम नहीं थी। उसने सोचा—'शब्द-वेधी की भी आँखों में धूल झोंक कर करुणा के साथ मजे में विवाह कर लूँगा।'

मन्दिर से सोमशर्मा बाहर निकला और वरवधू के पास आया। अपार दुख में पड़ी हुई, सिर झुकाए खड़ी करुणा को, और उस के पास ही खड़े हुए बूढ़े कबन्धवर्मा को, उसने आशीर्वाद दिया। विजयवर्मा को मालूम हुआ कि अब यह जबरदस्ती की शादी शायद नहीं रुक सकेगी।

सोमशर्मा आगे-आगे चला और वरवधू उसके पीछे-पीछे जाने लगे। सहसा जङ्गल को गुँजाते हुए मङ्गल-वाद्य बजने लग गए। उसी समय मन्दिर को चारों ओर से घेरे, घने पेड़ों में से, एकाएक दो बाण सनसनाते हुए आए; एक सोमशर्मा की बाँह में और दूसरा कबन्धवर्मा की छाती में घुस गया।

वहाँ जमा हुए लोगों में हाहाकार मच गया—'शब्द-वेधी! शब्द-वेधी!! पेड़ों में खोजो!!!' कहता हुआ भीमवर्मा चिल्ला उठा। कबन्धवर्मा की छाती में बाण घुस गया था। वह ऐसा गहरा था कि पीड़ा से छट-पटा कर उसने प्राण छोड़ दिए। सोमशर्मा की भुजा में जो तीर घुस गया था—उसने खींच कर उसे बाहर फेंका और गरज कर कहने लगा—'यह दुष्टता शब्द-वेधी की नहीं हो सकती, यह तो विजयवर्मा का काम है। जरूर वह यहीं-कहीं पेड़ों में छिपा होगा—खोज निकालो उसे।'

भीमवर्मा के कुछ सिपाहियों ने उन लोगों को घेर लिया जो शादी देखने आए थे, और कुछ सिपाहियों ने मन्दिर के चारों ओर के पेड़-पौधों और आस पास के जङ्गल प्रदेश की छान-बीन शुरू कर दी।

विजयवर्मा को एक ओर खुशी हो रही थी, और दूसरी ओर बड़ा डर भी हो रहा था। किसी तरह बूढ़ा कबन्धवर्मा मारा गया, जबरदस्ती की यह शादी रुक गई। लेकिन यह भीमवर्मा के सिपाही जो चारों ओर से घेरे लोगों की जाँच-पड़ताल कर रहे हैं, इन से किस प्रकार जान बचाई जाय। यह एक गहरी समस्या उसके सामने आ खड़ी हुई।

'नाथूसिंह! अब क्या उपाय है!' उसने बड़ी आतुरता से पूछा।

यह सुन कर नाथूसिंह कहने लगा—'उपाय पूछ रहे हो! अब दूसरा उपाय क्या रह गया है! 'जय सीताराम' कहो! हमारे लिए एकमात्र यही उपाय रह गया है। जब तक साँस तब तक आस! 'जय सीताराम' कहते चलो! मरने पर भी मुक्ति मिल जाएगी!' यह कह कर नाथूसिंह ने एक लम्बी साँस छोड़ी।

विजयवर्मा ने भी कहा—'जय सीताराम!' उस के सिवा और करना ही क्या है।'

'जय सीताराम हर हर महादेव....'

नाथूसिंह जब तक यह कह ही रहा था, कि दस सिपाहियों को साथ लिए सोमशर्मा उसके सामने आकर खड़ा हो गया।

'कौन यह 'जय सीताराम' कह रहा है!' कह कर वह आँखे फाड़-फाड़ कर देखने लगा।

'हम....हम....हिमालय पहाड़ पर साठ साल तक तपस्या करने....'

'साठ साल तक तपस्या! अरे, अभी तो तुम कुल तीस के भी नहीं हुए होगे!' यह कह कर सोमशर्मा ने अपने सिपाहियों को हुक्म दिया—'बाँध लो इन्हें।'

'साठ साल तक ही नहीं....बीस ... दस ...' नाथूसिंह इस तरह बड़-बड़ाने लगा।

'बाँध लो इन्हें संन्यासी नहीं धोखेबाज हैं ये लोग।' सोमशर्मा गरज उठा। सिपाहियों ने फौरन विजयवर्मा और नाथूसिंह के हाथों में हथकड़ियाँ डाल दीं।

हथकड़ियाँ पड़ते ही विजयवर्मा सोचने लगा—'अब सब कुछ चौपट हो गया। अभी नहीं तो कुछ देर बाद सोमशर्मा और भीमवर्मा को मालूम ही हो जाएगा कि हम लोग कौन हैं! इस के बाद जो कुछ होगा वह साफ-साफ मालूम हो रहा है। मेरे साथ नाथूसिंह की भी बलि दे दी जाएगी...!'

इतने में भीमवर्मा फिर कुछ सरदारों को लेकर वहाँ आ गया। उसका मुँह बता रहा था कि तलवार भोंकने से भी उस में से एक बून्द खून नहीं निकलेगा। उसने सोचा था कि सब कुछ मजे में हो जाएगा, इस तरह कोई बाधा आकर नहीं खड़ी होगी।

सोमशर्मा, विजयवर्मा और नाथूसिंह की ओर देख कर भीमवर्मा से कहने लगा—

'ये लोग कपटी संन्यासी हैं। शायद ये लोग चण्डीदास के जासूस हैं।'

भीमवर्मा विजयवर्मा के पास आया और सिर से पैर तक जलती आँखों से देखते उसकी जाँच-पड़ताल करने लगा। फिर कुछ सोचने के बाद उसने विजयवर्मा की दाढ़ी को पकड़ कर खींचा, खींचते ही विजयवर्मा की दाढ़ी उसके हाथ में आ गई।

'आहा!' कह कर गूढ़ भाव से भीमवर्मा हँस पड़ा। उसके बाद सोमशर्मा की ओर मुड़ कर उसने कहा—'ये लोग चण्डीदास के दल वाले हैं—यही तुम्हारा अभिप्राय है न!'

'हाँ! मालूम तो ऐसा ही होता है। वह नकली दाढ़ी, वह चोर दृष्टि....!'

'विजयवर्मा ही क्यों नहीं हो सकता!' कह कर भीमवर्मा बड़े जोर से हँसा—'हाँ विजय!' कहते हुए विजयवर्मा ने अपनी छाती ठोंकी।

सोमशर्मा उसकी बात से काँप उठा। वहाँ जो सरदार खड़े थे आश्चर्य से आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगे। लेकिन विजयवर्मा जर भी विचलित न होकर कहने लगा—

'हाँ! मैं विजयवर्मा ही हूँ, तुम्हारा और सोमशर्मा का जानी दुश्मन!'

'पिंजड़े में पड़ने के पहले तुम जानी-दुश्मन थे। लेकिन अब... ...? अच्छा यह योगीराज कौन हैं?' भीमवर्मा ने व्यङ्ग से कहा।

'वह? मेरा दाहना हाथ है! नाम है नाथूसिंह!!'

'आहा नाथूसिंह जी!' कह कर भीमवर्मा खूब जोर से हँसा। जो लोग वहाँ जमा थे, वे भी हँसने लगे। भीमवर्मा ने दाहने हाथ से सबों को चुप रहने का संकेत करके, बाएँ हाथ से नाथूसिंह की दाढ़ी पकड़ी और व्यङ्ग बरसा कर बोला—

'बाबू नाथूसिंह जी ने सोचा होगा कि घाटों की ठेकेदारी से इस व्यापार में ज्यादा लाभ होगा!'

इस बात से वहाँ के सब लोग फिर ठठा कर हँस पड़े। नाथूसिंह के मन से उस समय प्राणों का डर जाने कहाँ भाग गया, दाँत पीस कर गुस्से से वह यों कहने लगा—

'हम लोग पिंजड़े में फँस सकते हैं, लेकिन तुम लोगों को पिंजड़े में बन्द करने को तैयार जो चण्डीदास है उसकी बात याद रखो! अभयवर्मा की हत्या करने वालों को और उनके पुत्र विजयवर्मा को मारने वालों को चण्डीदास छोड़ेगा नहीं, इसका विश्वास रखो!'

नाथूसिंह की रोष भरी बातों ने भीमवर्मा को ही नहीं, उसके साथियों को भी निःशब्द बना दिया। सोमशर्मा निश्चेष्ट हो गया, उसके मुँह से कोई बात न निकली, हवा में डोलते हुए पीपल के पत्ते की तरह वह थर-थर काँपने लगा।

भीमवर्मा कुछ देर सिर झुकाए खड़ा रह गया। एक-न-एक निश्चय पर तुरन्त पहुँचना ही चाहिए! यह सोच कर उसने निश्चय कर लिया कि विजयवर्मा को अब वह जीता नहीं जाने देगा।

'जहाँ चार राजा जमा होते हैं, वहाँ न्याय होता है, यह न्याय शास्त्र कहता है! सब लोग यह मन्जूर करते हैं न!' भीमवर्मा ने कहा।

'मन्जूर है! मन्जूर है!!' कहते हुए सब सरदार एक स्वर से बोल उठे। उसके बाद सोमशर्मा यों कहने लगा—'इन दोनों को शत्रु सैनिक में नहीं गिना जाना चाहिए। यह लोग तो हत्यारे हैं.... साधारण बधिक हैं.... धर्म-शास्त्र भी.....!

'सोमशर्मा ठहरो!' कहते हुए भीमवर्मा उसे रोक कर बोला—'यह लोग हत्यारों से

जब तक जान न निकल जाए, ये लोग पेड़ से लटकाए रखे जाएँ! क्या सब को मन्जूर है न...?'

'मन्जूर है! हम सब को मन्जूर है!!' सभी सरदारों ने एक स्वर में कहा। लेकिन उसी समय कांसे की सी आवाज़ में यह शब्द सुनाई पड़े—'मैं देवलपुर का जमींदार हूँ। तुम सब मेरे मेहमान हो, लेकिन मेरी आज्ञा के बिना तुम लोग यहाँ किसी प्रकार का न्याय निर्णय नहीं कर सकते!

भीमवर्मा और सोमशर्मा के साथ-साथ सब लोगों ने मुड़ कर इस ध्वनि की ओर देखा। दस सैनिकों के साथ देवलपुर के जमींदार आते हुए दिखाई पड़े। उनके सम्मान के लिए सब लोग उठ खड़े हुए और स्वागत-सत्कार करने लगे।

देवलपुर के जमींदार को आया हुआ देख कर विजयवर्मा और नाथूसिंह को फिर से धीरज बँध गया। सच पूछा जाए तो कबन्धवर्मा की हत्या में इन लोगों का कोई हाथ नहीं है, और हत्यारे का निर्णय करना किसी भी न्यायाधीश के बश की बात नहीं। ज्यादा-से-ज्यादा इन पर इतना ही इल्जाम लगाया जा सकता है कि उन हत्यारों के भी बढ़ कर नीच हैं! अध्यात्मिक-शक्ति वाले योगियों को भी इन लोगों ने अपने नकली वेश से अपमानित किया; मन्दिर के पवित्र प्राण-गण को इन लोगों ने लहू से सींच दिया है। विवाह की पोशाक में कबन्धवर्मा की....!'

'इनको फाँसी पर चढ़ा देने के लिए इनमें से एक भी अपराध काफ़ी है!' सोमशर्मा ने गुस्से से कहा। भीमवर्मा ने चारों ओर देख कर कहा—'अच्छा! तो इन्हें मौत की सज़ा दी गई! गले में फाँसी डाल कर पेड़ से लटका दिया जाय, और

साथ इनका कुछ संबन्ध हो सकता है! देवलपुर के जमींदार को देखते ही भीमवर्मा के तन-बदन में आग-सी लग गई, दाल-भात में मूसलचन्द की तरह ये लोग कहाँ से आ धमके यहाँ! लेकिन तल्वार से वह कुछ नहीं कर सकता था, सब कुछ कौसल से साधना होगा, इसलिए उसने कहा—

'ये दोनों हत्यारे हैं, इन लोगों ने शादी की पोशाक पहने कबन्धवर्मा की हत्या की!'

इनके पास छुरी-कटारी तो कुछ नहीं दीख पड़ती—!' कह कर देवलपुर के जमींदार ने अपना सन्देह प्रगट कर दिया।

'इन लोगों ने तीर से हत्या की, मैं जरा से बच गया हूँ! यह नकली वेश ही इन्हें हत्यारा साबित करता है—!' सोमशर्मा ने कहा।

'इस देवलपुर-राज्य में नकली वेश धारण करने के कारण कोई अपराधी नहीं समझा जाता! तीर मार कर इन लोगों ने कबन्धवर्मा की हत्या की, इसका कोई सबूत नहीं। अच्छा....! हम सब इसका इन्साफ़ कर देंगे—!' देवलपुर के जमींदार ने कहा।

विजयवर्मा और नथूसिंह को देवलपुर के जमींदार के सैनिकों ने अपने वश में कर लिया। अब क्या किया जाए! भीमवर्मा लाचारी से देखता रह गया! वे लोग सरदारों के सामने खड़े कैदी को ले जाने लगे। अब भीमवर्मा चुप न रह सका, उसने कहा—

'देवलपुर के शासनाधिकार को हम मानते हैं। यह सच है कि हम लोग यहाँ अथिती होकर आए हैं। लेकिन कौसलपुर के अधिपति के विरुद्ध काम करने वाले इन लोगों को आप यों ही नहीं छोड़ देंगे, ऐसा मेरा विश्वास है!'

यह बात सुनते ही देवलपुर का जमींदार हठात् रुक गया। फिर कुछ सोच कर वह

भीमवर्मा के पास गया और सलाह-मशविरा करने लगा। उसके बाद उस से विदा लेते हुए उसने कहा—

'हम सब बीसलपुर के अधिपति के अनुचर ही हैं और जो बीसलपुर के द्रोहियों के साथ हाथ मिलाएगा, वह हमारे हाथ से बचकर नहीं जा सकता। तुम लोगों के सामने यह वचन मैं देता हूँ!' सोमशर्मा और भीमवर्मा यह बात सुन कर परवश हो गए। नाथूसिंह की ऊपर की साँस ऊपर ही रह गई! विजयवर्मा को ऐसा मालूम हुआ कि जैसे खाई से निकल कर खन्दक में पड़ने जा रहा हो। लेकिन विधि-विधान के सामने सिर झुका कर कसमसाते हुए कलेजे से चुप रह गया।

देवलपुर के जमींदार ने कैदियों को आगे-आगे ले जाने का हुक्म दिया। जङ्गल पार करके सब लोग नगर में पहुँच रहे थे कि विजयवर्मा को सहसा करुणा की याद आ गई। कबन्धवर्मा की छाती में बाण लगते ही जो गोल-माल हुआ, उसमें करुणा की हालत क्या हुई? उसे कुछ मालूम न हो सका।

'करुणा की गति क्या हुई होगी?' विजयवर्मा ने नाथूसिंह से पूछा।

'कौन जाने क्या हुई होगी...! पहले अपनी बात तो सोचो—!' नाथूसिंह ने कहा।

'चलो, भाई चलो!' कहते हुए देवलपुर जमींदार के सैनिकों ने उनसे गरज कर कहा। विजयवर्मा और नाथूसिंह सोचने लगे कि ठीक मौत के मुँह में कदम बढ़ा रहे हैं! कुछ देर में वे देवलपुर जमींदार के महल में पहुँच गए।
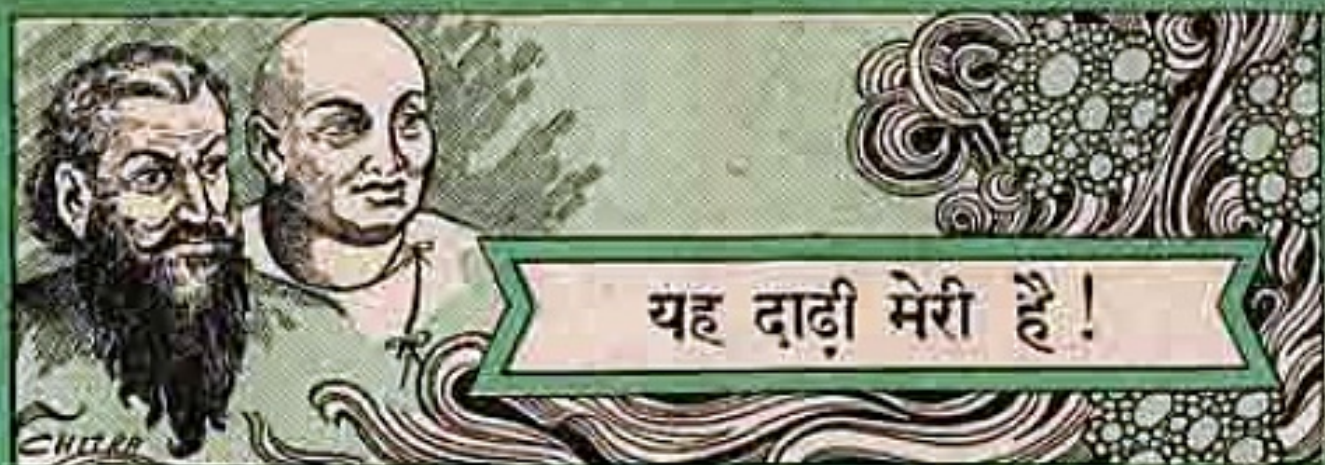
[अभी और है]

एक समय किसी गाँव में लाडमल और हजारीमल दो दोस्त रहते थे। दोनों बड़े व्यापारी थे और दोनों ने खूब पैसा जमा कर रखा था। लेकिन हजारीमल कुछ खर्चीला था। लाडमल को 'दिन प्रति लाभ-लोभ अधिकाई' के अनुसार लोभ और लालसा की अधिकता थी। हजारीमल हमेशा घुटा-घुटाया रहता, और लाडमल ने जाने क्यों बाल और दाढ़ी बढ़ा रखे थे!

एक रोज दोनों बैठे हुए मजे से गप-शप कर रहे थे कि हजारीमल ने कहा—'लाडमल अब तक तुम से मैंने नहीं कहा, लेकिन तुम्हारी दाढ़ी देखने में कितनी अच्छी लगती है। अब तक जाने मैंने कितनी दाढ़ियाँ देखी होंगी, लेकिन तुम्हारी दाढ़ी की तरह हमारे देश में एक भी दाढ़ी नहीं मिलेगी।'

यह सुन कर लाडमल अभिमान से बोला—'ठीक कहते हो हजारीमल, सब लोग ऐसा ही कहते हैं। इतना ही नहीं कितने लोगों ने मेरी दाढ़ी पर नजर भी गड़ाई! गुञ्जाइश होती तो वे खरीद लेने को भी तैयार हैं।'

उसकी बात सुनते ही हजारीमल ने बड़ी आतुरता से पूछा—'कौन हैं वे लोग? वे क्यों? मैं ही खरीद लूँगा, बोलो क्या लोगे?'

धन के लोभ से लाडमल के मन में सहसा अनेक तरह की कल्पनाएँ उठीं। अनायास बात के सिलसिले में वह बोल गया—'अच्छा! तो एक हजार मुहरें दे दो।'

इसमें क्या है! ले लो, एक हजार मुहरें! मैंने सोचा था कि तुम न जाने इसका कितना मोल माँग बैठो....!' कह कर उसने कुछ बयाना उसके हाथ में रख दिया।

यह देख कर लाडमल घबरा गया। हजारीमल एक शर्त रख कर बोला—'भाई!

श्यामलाल

अब से यह दाढ़ी मेरी हो गई। जब तक मैं तुम्हें इसकी पूरी कीमत न चुका दूँ, तब तक थाती की तरह, यह तुम्हारे पास ही रहेगी। खूब सावधानी से इसकी रक्षा करना समझे!—मेरी इस दाढ़ी में मेरी इच्छा के अनुसार ही तुम्हें तेल डालना होगा। मेरी रुचि के अनुसार ही इसको कतरवाना भी होगा।' लाडमल ने झट उसकी शर्त मंजूर कर ली। कानूनी कागज-पत्र लिखित रूप में तैयार कर लिए गए। हजारीमल ने फिर से एक बार चेतावनी दी—' देखो, भाई! अब अगर कोई इस दाढ़ी को देख कर इसकी तारीफ़ करने लगे तो तुम कह देना—'भाई! यह दाढ़ी अब मेरी नहीं है, अमुक आदमी की है, उसने दाम देकर इसे खरीद लिया है। इस प्रकार से तुम्हें समझा कर कहना होगा समझे—!'

'बहुत अच्छा!' लाडमल ने कहा।

दूसरी दिन से....

अब वक्त-बेवक्त हजारीमल लाडमल के पास आने लगा। उसको यों आते देख कर लाडमल पूछता—' कैसे आए भाई!'

इसके जवाब में हजारीमल कह देता—'और कुछ नहीं! सिर्फ मेरी दाढ़ी कैसी है? यह देखने के लिए आ गया हूँ!' कभी-कभी तमतमाता हुआ वह आता और कहने लगता—'यह क्या है भाई? मेरी दाढ़ी सब नष्ट होती जा रही है, लहराती रहने वाली इस दाढ़ी में सस्ते नारियल का तेल डाल कर तुमने इसे ऐसा कर दिया और यह बेसिलसिला कंघी डालना क्या! जिसमें सभ्यता का नाम नहीं!' यों व्यङ्ग से कह कर वह चिल्लाने लग जाता था। इस तरह आए दिन होहल्ला मचाते देख कर लाडमल के प्राण ऊबने लगे। अब मित्रता निभाना मुश्किल हो गया।

दोनों दिलों में खटाई पड़ गई। 'भाई! तुम्हें बड़ा पुण्य होगा, किसी तरह लोभ-लालच के कारण आगा-पीछा सोचे बगैर मैंने तुम्हारी शर्त मान ली थी! अब मेरी दाढ़ी मुझे दे दो और अपनी कीमत वापस कर लो!' यों लाडमल गिड़-गिड़ाने लगा।

हजारीमल ने उसकी बात न मानी! यह देख कर लाडमल ने कहा—'अच्छा! नहीं मानते हो तो जितना तुमने दिया है उसका दुगना ले लो!' लेकिन हजारीमल कुछ नहीं बोला। यह देख कर लाडमल किसी प्रकार इस बला से पिंड छुड़ाने के लिए चार हजार मुहरें देने को तैयार हो गया। 'देखें! यह कहाँ तक जाता है!'—यह सोच कर हजारीमल अकड़ता ही चला गया।

लाडमल को कुछ नहीं सूझा, बड़ी मुश्किल में पड़ गया वह। यों एक दिन रात के वक्त हजारीमल अपनी आदत के मुताबिक उसके पास आ धमका। लाडमल गाढ़ी नींद में था फिर भी उसने जोर से उसकी दाढ़ी खींची। आश्चर्य! दाढ़ी का गुच्छा का गुच्छा उसके हाथ में आ गया!

लाडमल धड़-फड़ा कर उठा और हो-हल्ला मचाता हुआ हाकिम के पास फरियाद करने दौड़ गया। चतुर हाकिम दोनों के मन की बात समझ गया और उसने फैसला किया—

'दाढ़ी मैंने खरीदी, इस पर हक मेरा है! इस कहने से हजारीमल का अपने दोस्त को सताना और इस तकलीफ को न सह कर लाडमल का नकली दाढ़ी लगाना साबित होता है।'

इसलिए हजारीमल ने आधी-रात के समय लाडमल के घर पर जाकर बल-पूर्वक जो दाढ़ी खींच ली वह उसे ले आए और लाडमल को दाढ़ी का जो दाम चुकाना था, उसे खर्च के साथ फौरन चुका दे।'

शिखरों की ऊँचाई

★

हिमालय पर्वत के शिखरों की ऊँचाई नीचे दे रहे हैं, मगर हर शिखर के नाम के आगे दूसरे शिखर की ऊँचाई है। जरा अपने आप हर शिखर की ऊँचाई सही-सही उसके नाम के सामने लगाओ तो, न लगा सको तो, नीचे उलटे अक्षरों में देखो।

१. माउन्ट एवरेस्ट — क : २८,१४६ फुट।
२. धौला गिरी — ख : २५,६४५ ,,
३. नन्दा देवी — ग : २१,००२ ,,
४. कामेट — घ : २६,७५५ ,,
५. किंचिनजुंगा — ङ : २७,७९० फुट।
६. माकालू — च : २०,७२० ,,
७. ननगा पर्वत — छ : २५, ४४७ ,,
८. बदरीनाथ — ज : २६,६५२ ,,

---

१. ग— २. घ— ३. ख— ४. छ— ५. क— ६. ङ— ७. ज— ८. च—

आविष्कारों की सूची

★

कुछ आविष्कर्ताओं के नाम और उनके आविष्कारों की सूची दी जती है। किन्तु हर नाम के सामने दूसरे का आविष्कार है! जरा दिमाग पर जोर देकर नाम और आविष्कारों को ठीक तो करो, न कर सको तो, नीचे उलटे अक्षरों में देखो।

१. एडिसन — क : रेडियम
२. मायकल फ़ेडी — ख : पेनोसिलिन
३. मारकोनी — ग : ग्रमोफोन
४. राइट ब्रोदर्स — घ : स्टीम इंजिन
५. जैम्स व्हाट — ङ : वायर लैस
६. अलेक्जेन्डर फिलेमिंग — च : इलैक्ट्रीसिटी
७. डा. रेन्टजेन — छ : ऐरोप्लेन
८. ग्राहम बैल — ज : ऐक्सरे
९. मादाम क्यूरी — झ : टेलिफोन

---

१. ग— २. च— ३. ङ— ४. छ— ५. घ— ६. ख— ७. ज— ८. झ— ९. क—

कूपा कुम्हार और उसका कुआँ

मारवाड़ राज्य में जीतरा नामक एक गाँव है। बहुत पहले उसमें कूपा नामक एक कुम्हार रहता था। वह सज्जन, भक्त, ज्ञानी और विरक्त व्यक्ति था। उसकी पत्नी उसके लायक गृहणी और बड़ी गुणवन्ती थी। वे दोनों मेहनत-मशक्कत करके गुजर-बसर करते थे, और पांडुरंग-स्वामी तथा उनके भक्तों की अत्यन्त श्रद्धा-भाव से सेवा-सत्कार करते रहते थे।

वे रोज एक-एक घड़ा गढ़ा करते थे, और महीना भर तक जमा करते जाते थे। फिर महीना पूरा होते ही तीसों घड़ों को एक-साथ बेच देते थे। उस से जो आमदनी होती थी, उसकी एक चौथाई भगवान के भक्तों और साधुओं के लिए रख छोड़ते थे और जो बच जाता था उससे अपनी गुजर-बसर करते थे।

इस प्रकार जीवन बिताने वाले उस कुम्हार की अपने ही गाँव में नहीं, पास-पड़ोस के गाँव में भी तारीफ़ होने लगी। लोग कहने लगे—'देखो, वह कूपा कुम्हार कितना धर्मात्मा, कितना हरि-भक्त, कैसा साधक और कैसा सेवा-परायण है!'

लेकिन वहाँ के राजा को यह बात सुन कर कूपा के प्रति ईर्षा पैदा हो गई। इसलिए उस ईर्षा के कारण उसने हुक्म दिया—'सब कुम्हारों को घर पीछे हर महीने राज कर के रूप में दस-दस घड़े देने पड़ेंगे!' खाते-पीते कुम्हार राजा की आज्ञा के अनुसार राज कर चुकाने लगे। परंतु कूपा कुम्हार राज कर देने में असमर्थ हो गया, और स्त्री-पुत्र के साथ दिवानखाने में जाकर हल्ला मचाने लगा। राजा ने उनकी बातें सुन कर व्यङ्ग से जवाब

दिया—'तुम्हारी बात क्या है भाई! तुमने तो दान-धर्म करके दुनियाँ में बड़ी कीर्ति प्राप्त कर ली है! ऐसे महात्मा को यह छोटा सा राज कर चुकाना कौन सी बड़ी बात है!' कुम्हार ने बहुत हाथ-पाँव जोड़े, विनती की, लेकिन उस निर्दय राजा ने उसकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया!

अब करना क्या था! कुम्हार निराश होकर घर लौट आया, और अपनी औरत के साथ मिल कर दुगनी मेहनत करने लगा। कितनी भी मेहनत की, लेकिन तीस घड़ों से वह ज्यादा न बना सका! यह देख कर उसकी निराशा बेहद हो गई! लेकिन एक दिन उसकी औरत ने आवाँ लगाया और पक जाने पर जब उसे खोला तो, उस में तीस के बदले चालीस घड़े निकले!

यह सब उसी भगवान पांडुरंग की महिमा का फल है! इस विश्वास से उस कुम्हार ने और भी उत्साह के साथ भगवान की पूजा और भक्तों का सेवा-सत्कार करना शुरू कर दिया। साथ ही राज कर में दस घड़े दे कर वह सुख-पूर्वक रहने लगा!

इस प्रकार जब वह रह रहे थे, तब साधुओं का एक दल जीतरा गाँव में आया और सीधे उस कुम्हार के द्वार पर पहुँच कर 'जय सीताराम!' करने लगा। उनकी आवाज़ सुन कर कूपा पत्नी के साथ बाहर निकला और साधुओं को आदर-मान से बिठा कर कुशल-प्रश्न करने लगा।

उनमें से एक साधु बोला—'भक्त-शिरोमणि! आज पाँच-छह रोज से हम लोगों ने भोजन नहीं किया है आज तुम्हारे घर पर भोजन करने के इरादे से हम लोग आए हैं!' यह सुन कर वह कुम्हार बोला—'भक्त-रक्षक पांडुरंग की दया जब तक हम पर है, चिन्ता किस बात की!'

उनके भोजन आदि के लिए जरूरी सामान लाना था। लेकिन इसके पास इतने पैसे कहाँ थे! इसलिए वह एक बनिए के पास पहुँचा। बनिया उसको देख कर बोला—'क्या भाई कुम्हार! अब तक जो उधार लिया था, वह तो चुकाया ही नहीं और अब फिर माँगने आ गए हो! अच्छा, मुझे एक कुआँ खुदवाना है, क्या खोद दोगे?' कुम्हार ने मंजूर कर लिया। बनिए ने उसे रुपए दे दिए। कुम्हार सब सामान खरीदकर घर पहुँचा और धूम-धाम से साधुओं को खिलाया-पिलाया। फिर टोकरी कुदाल लेकर वह कुआँ खोदने बनिए के घर जा पहुँचा और अपनी औरत के साथ वह कुआँ खोदने लग गया।

एक दिन खोदा, दूसरे दिन खोदा, तीसरे दिन खोद ही रहा था कि भगवान की विशेष दया से नीचे से महा-उज्ज्वल जल धारा निकली। लोग आश्चर्य से वहाँ जमा हो गए और उस जल धारा को देखने लगे। देखते-देखते कुआँ जहाँ खड़ा था, वहाँ की धरती धँसी और वह उस में समा गया।

पति को गिरते हुए देख कर पत्नी भी सुरंग में कूदने को तैयार हो गई। किन्तु लोगों ने उसे पकड़ लिया। इतने में आकाश वाणी हुई—'देवी! तुम्हारा पति मरा नहीं है। लेकिन वह एक साल के पहले निकल नहीं सकता, एक साल बाद वह अपने आप आ जाएगा। उसके बाद तुम दोनों मिल कर संसार में भक्ति-भाव का प्रचार करना, अभी किसी प्रकार की जल्दी न बैठना।' उनकी बात मान कर वह घर लौट आई और एकान्त में बैठ कर भगवान का ध्यान करने लगी।

इस तरह एक साल की अवधि पूरी होते ही, लोगों को उस कुँए के पास हर रात को

ऐसी आवाज सुनाई देने लगी जैसे कि कूपा कुम्हार हरि-कीर्तन कर रहा हो।

यह देख कर सब लोग विस्मित हो उठे। यह समाचार एक कान से दूसरे कान फैलता हुआ राजा के कानों में भी पड़ा। राजा सोचने लगा यह कैसा आश्चर्य है! वह खुद कुँए के पास गया और अपनी देख-भाल में खुदवाने लगा। जब उसके ऊपर की मिट्टी हटाई गई तो देखा गया कि शंख-चक्र, गदा-पद्म और कौस्तुभ-मणि से उद्भासित वहाँ साक्षात भगवान ही विराजमान थे!

उनके सामने ही कूपा कुम्हार तन्मय होकर हरि कीर्तन कर रहा था! राजा को यह दृश्य भी दिखाई पड़ा!

यह देख कर राजा ने उस महात्मा कुम्हार को बाहर निकाला और गाँव-वासियों को दिखाया। सब लोग दौड़े-दौड़े आए और उसके चरणों पर पड़ कर प्रणाम करने लगे। जिसने कुआँ खोदने को कहा था, वह बनिया और जिसने राजकर लगाया था, वह राजा दोनों आकर उस से क्षमा-याचना करने लगे।

यह देख कर वह महात्मा उन लोगों से कहने लगा—'भाइयो यह तो आप लोगों की ही कृपा का फल है कि मैं एक साल तक निश्चित होकर भगवान के भजन करने का मौका पा सका। इसका सारा श्रेय आप लोगों को ही है!' उसके बाद उस प्रदेश में अनेक मन्दिर बनाने लग गए। और लोगों में भक्ति-भावना की बाढ़ आ गई!

आज तक कूपा कुम्हार का वह कुआँ, भगवान की दया से पांडुरंग-क्षेत्र में बना हुआ है। भगवान के भक्त जो वहाँ आते हैं, पहले उस कुँए के दर्शन करते हैं तब भगवान का!

मिठाई वाले का स्वप्न

यह उन दिनों की बात है, जब स्वामी विवेकानन्द ने संन्यास लेकर देश का भ्रमण करना शुरू कर दिया था। गर्मी के दिन थे, दुपहरी वेला थी ; उस समय विवेकानन्द को राजस्थान में रेल का सफ़र करना पड़ा। उनके पास ही एक व्यापारी भी बैठा हुआ था। स्वामीजी ने कई दिनों से कुछ नहीं खाया था। स्टेशन-स्टेशन पर पानी पिलाने वालों से वे कुछ पानी माँगते आते थे, लेकिन हाथ में कुछ न पड़ने के कारण वह उनको पानी दिए बिना ही दूसरी जगह चला जाता था। यों प्यास के मारे उनका कण्ठ सूखने लग गया।

स्वामीजी के पास जो व्यापारी बैठा हुआ था, वह साधु-संन्यासियों का परम विद्वेषी था। वह धनवान था ; इसलिए रास्ते भर फल, दूध, अनेक तरह के पकवान, ठण्डा पानी वगैरह खरीद कर चढ़ाता जाता था; और स्वामीजी को देख कर हँसी-दिल्लगी, और व्यङ्ग-बौछार भी करता जाता था।

आखिर वे दोनों तारीघाट नामक स्टेशन पर उतरे। वहाँ दरिद्र स्वामी का मुँह कौन देखता ! स्टेशन पर सिर छिपाने के लिए कोई छाया-दार जगह भी नहीं मिल सकी ! इसलिए बदन पर का कपड़ा भिगो कर स्टेशन के बाहर बदन जलती हुई बालू पर, एक खम्भे से सट कर, स्वामीजी बैठ गए। उनके सामने ही कुछ दूर ठण्डी जगह पर मुलायम आसन डाल कर अनेक तरह के भोज्य-पदार्थों के साथ गर्व से बैठा हुआ वह व्यापारी सितारे की तरह चमक रहा था !

लेकिन वह चुप-चाप बैठा नहीं रहा, ढिठाई के साथ बोला—'स्वामीजी महाराज! इधर देखिए तो सही! आहा! कितना ठण्डा पानी है! ...ओहो! कितने मजेदार लड्डू हैं!

शान्ति श्रीवास्तव

यह खास्ता-पूरी और कचौड़ियाँ तो देखो! संन्यासी हो कर क्या फल पा रहे हो? कुछ काम करके पैसे कमाओ और सुख भोगो। इस दरिद्रता से तुम्हें क्या मिलेगा? अरे, जेब खाली रहने से पेट कैसे खाली रह सकेगा? जान-बूझ कर जो आफ़त मोल लेता है उसके लिए कौन क्या कर सकता है? भोगो! अपनी करनी का फल खूब भोगो!! यों मखौल उड़ाता वह उद्धत आदमी उन्हें अनेक तरह से बेधता रहा।
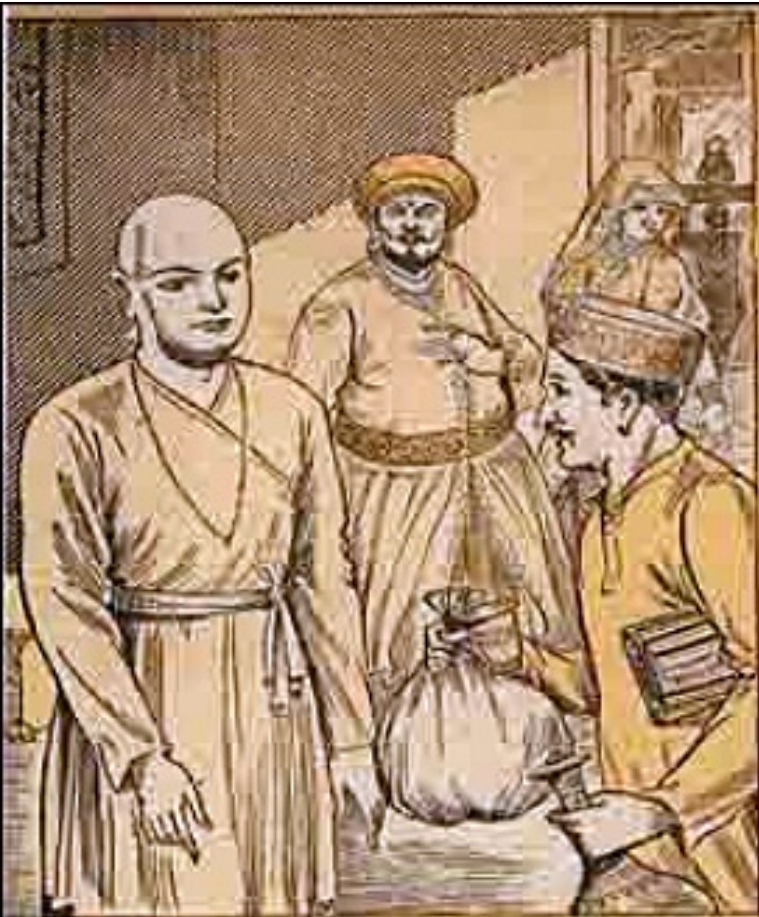
इन सब हास-परिहास तथा बेवकूफ़ी की बातों से ज़रा भी नाराज न होकर स्वामीजी एकदम चुप-चाप बैठे रह गए! इतने में न जाने कहाँ से एक आदमी दाएँ हाथ में एक गठरी, गिलास और बाएँ हाथ में ठण्डे पानी वाली मिट्टी की एक सुराही लिए और बगल में एक मुलायम छोटी-सी दरी दबाए, दौड़ा-दौड़ा स्टेशन पर आया। आते ही उसने एक साफ़-सुथरी जगह में वह दरी बिछा दी। फिर गठरी खोली और उस में से तरह-तरह की खाने की चीज़ें निकाल कर पत्तल पर फैला दीं! फिर बड़े उल्लास से वह स्वामीजी के पास गया और बोला—'महाराज! इधर पधारिए और भोग लगाइए!' अति विनीत भाव से वह प्रार्थना करने लग गया!

स्वामीजी आश्चर्य-चकित रह गए! वह व्यापारी, जिसने उन्हें इतना चिढ़ाया था, मुँह बाए आँखें फाड़-फाड़ कर, पत्थर की मूर्ति की तरह, देखने लग गया।

वह नवागत पुरुष हाथ जोड़ कर स्वामीजी से इस प्रकार आग्रह करने लगा—'स्वामीजी! अब देर मत कीजिए! जल्दी आकर भोजन कर लीजिए!'

इस पर स्वामीजी बोले—'भाई! तुम कुछ भूल रहे हो क्या? किसे देख कर क्या

सोच रहे हो! तुम्हें कहीं मैंने देखा हो—ऐसा तो याद नहीं आ रहा है!'

इस पर वह ग्रामवासी बोला—'नहीं! नहीं!! स्वामीजी! मेरी आँखें मुझे धोखा नहीं दे रही हैं! मैं आप को खूब पहचानता हूँ। इसमें भूल-चूक की कोई बात नहीं है!' यह सब देख कर अत्यन्त आश्चर्य से स्वामीजी बोले—'भाई! तुम्हारी बातें मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रही हैं! क्या तुमने मुझे कहीं देखा है?'

इस पर वह कहने लगा—'स्वामीजी! मैं आप के गाँव का ही मिठाई वाला व्यापारी हूँ। आज सवेरे भोजन करके आदत के मुताबिक थोड़ी देर के लिए आँखें मूँद कर लेटा हुआ था, उसी समय एक स्वप्न देखने लग गया! स्वप्न में भगवान रामचन्द्र की मूर्ति मेरे सामने आ खड़ी हुई और आप की ही—हूबहू आप की ही तरह के आदमी को उँगली से दिखा कर बोली—'देखो, वह देखो! तुम्हारे सामने जो व्यक्ति दिखाई पड़ रहा है, उसने कल से कुछ नहीं खाया है और भारी कष्ट झेल रहा है! उसका वह सारा कष्ट मुझे ही भोगना पड़ रहा है! इसलिए उठो! फौरन उठो!! पूरी तरकारी बना लो—और मिठाइयाँ, ठण्डा पानी, बैठने के लिए एक मुलायम आसन वगैरह लेकर दौड़े हुए स्टेशन को चले आओ!' स्वप्न की बातों पर कौन विश्वास करे, यह सोच कर मैं करवट बदल कर सो गया!

तब भगवान रामचन्द्र ने फिर से दर्शन दिए और वे कहने लगे—'अरे! क्या जल्दी नहीं उठोगे! क्या मेरे कहे अनुसार नहीं करोगे!' यह कह कर उन्होंने मेरी आँखों में उँगली भोंक कर जगा दिया। पुलकित होता हुआ मैं उठा और जल्दी-जल्दी पूरी-तरकारी बनाई—पहले से बना कर रखी हुई बढ़िया

मिठाई, गुलाब-जल पड़ा ठण्डा पानी और एक मुलायम दरी वगैरह लेकर, कहीं देर न हो जाए, इस डर से दौड़ता हुआ आया हूँ। स्वप्न में जो महात्मा मुझे दीख पड़े थे, वे आप ही हैं! और मैंने दूर ही से आप को पहचान लिया था। इसमें ज़रा भी धोखा या भ्रम नहीं है! अब देर न कीजिए; मेहरबानी करके ठण्डा होने के पहले ही इन सब चीज़ों को स्वीकार करके मुझे कृतार्थ कर दीजिए!' इस प्रकार वह भक्ति-भाव से अनुनय-विनय करता रहा।

स्वामीजी उठे और खुशी से पेट भर भोजन करके जी भर के ठण्डा पानी पिया, फिर उस मिठाई वाले व्यापारी के प्रति वे अपनी कृतज्ञता जताने जा ही रहे थे कि वह बोल उठा—'स्वामीजी! नहीं! नहीं!, मेरी कोई तारीफ़ न कीजिए, इसमें मेरा कोई श्रेय नहीं है! यह सब भगवान रामचन्द्र की प्रेरणा का फल है! उन्हीं की स्तुति कीजिए!' अब जिस व्यापारी ने स्वामीजी का परिहास किया था, उस पर गाज-सी गिर पड़ी और उसे एकदम काठ मार गया। कुछ देर के बाद वह होश में आया और कुछ याद करता और पछताता स्वामीजी के पैरों पर गिर कर उनकी पद-धूलि को सिर पर लगा कर कहने लगा—'स्वामीजी! क्षमा कीजिए!'

यह देख कर स्वामीजी की आँखों में भक्ति-भाव के उल्लास उमड़ आए! उन्हें ऐसा जान पड़ा कि जैसे उनके जीवन का एक बहुत बड़ा सन्देह मिट गया हो, और वे आनन्द से भर गए! उनके हृदय में भक्ति की रागिनी बज उठी—'राम! सुगुणोत्तम राम! करुणा-कृपालु राम!! जिसने कभी तुम पर विश्वास किया, उस पर से तुम्हारी दया-दृष्टि कभी हटी नहीं!'"

पंचकल्याण के रूप में

ब्रह्मदत्त जब काशी का राजा था, उस समय भगवान बोधिसत्व एक बढ़िया घोड़े के रूप में पैदा हुए। वह राजा के और घोड़ों की अपेक्षा अधिक बढ़िया और पंचकल्याण माना जाने लगा। इसी लिए उसका पालन-पोषण और आलंकरण एक विशेष प्रकार की शाही शान-शौकत के साथ होने लगा।

राजा के घोड़ों में सब से प्रसिद्ध उस 'पंचकल्याण' को जन्म के तीसरे साल से ही बढ़िया से-बढ़िया अनाज और घासों से तैयार कर आहार मिलने लगा। इस के अलावा उसे हजार मुहरों वाली एक सोने की थाली में परोस कर राज-भोग भी खिलाया जाता था। जब वह खाने लगता था तो पकवानों की खुशबू से सारा अस्तबल गम-गम करने लग जाता था। उस अस्तबल के चारों ओर मनोहर पर्दे लटक रहे थे। दिन-रात वह अस्तबल धूप-दीप अगरबत्ती तथा अनेक तरह के सुगंधित पदार्थों से सुरभित और प्रकाशित रहा करता था।

ऐसे सर्वोत्तम घोड़े से शोभित काशी राज को देख कर आस-पास के सामंत-राजों को कुछ ईर्ष्या-सी होने लग गई। एक दिन सात सामन्त-राजा एक जगह जमा हुए और काशीराज के पास संदेश भेजा—"आप या तो अपना राज्य हमें सौंप दीजिए या हम से युद्ध करने को तैयार हो जाइए"। फौरन काशीराज ने मन्त्रियों को बुलाया और सभी बातें खोल कर उन से कहीं। यह सब सुन कर मंत्रियों ने सलाह दी—"महाराज, उनके मुकाबिले के लिए मैदाने-जंग में खुद आप को जाने की जरूरत नहीं। वीरवर सेनापति वीरवर्मा को भेज देना काफ़ी है। वह उनका सिर कुचल देगा;

सूरज नारायण सिंह

यदि सेनापति उन्हें जीत न सका, तब उसके ऊपर हम विचार करेंगे।"

यह सुनकर काशी राज ने सेनापति को बुलाया और उससे पूछा—"वीरवर्मा, सात सामन्त-सरदार इस समय हमारे विरुद्ध उठ खड़े हुए हैं। क्या उन सातों को जीतना तुम्हारे लिए संभव होगा?" काशीराज की बात सुनकर बड़ी वीरता से वीरवर्मा बोला—"महाराज, इसके लिए अगर आप अपने सब से प्यारे पंचकल्याण को मेरे हाथों में सौंप दें, तो इन सात राजाओं की क्या हस्ती!—मैं समस्त भू मण्डल को जीत कर आप के चरणों में लाकर रख दूँगा" सेनापति की बात सुनकर राजा बहुत खुश हुआ, और पंचकल्याण को साथ करके सेनापति को साज-सज्जा के साथ विजय-यात्रा के लिए भेज दिया।

राजा के पास से पंचकल्याण को लेकर सेनापति शीघ्र युद्ध की तैयारी में लग गया।

वीरवर्मा बिजली की तरह चमकता हुआ किले से बाहर निकला, और बड़ी बहादुरी से लड़ कर उसने पहले सामंत-राज को पकड़ा और उसे कैदी बना लिया। इस के बाद वह फिर मैदाने-जंग में पहुँचा और दूसरे सामंत राज को पकड़ा, फिर तीसरे को पकड़ा, और इसी प्रकार पाँच राजओं को पकड़ उसने कैदी बना लिया।

अब तक जीत-पर-जीत हासिल करने वाला वीरवर्मा छट्ठे मोर्चे पर जब पहुँचा और विजयी होने जा ही रहा था, कि पंचकल्याण घायल हो गया और खून से लत-पथ होकर गिर पड़ा।

वीरवर्मा ने पंचकल्याण को एक ओर हटवा दिया, और उसने दूसरा घोड़ा लेकर लड़ने जाने की बात सोची। यह सोच कर वह पंचकल्याण की लगाम वगैरह उतारने लगा।

यह देख कर पंचकल्याण के रूप में साक्षात भगवान श्री बोधिसत्व ने सेनापति की ओर देख कर कहा—" ऐ वीर-शिरोमणि! यह क्या मुझे चोट लगते ही तू दूसरे घोड़े पर चढ़ने की तैयारी करने आ गया! सातवें मुकाम वाले राजा को पकड़ना क्या उस घोड़े से संभव हो सकेगा? अगर तू दूसरा घोड़ा लेकर लड़ाई में गया, तो अब तक मैंने जो काम किया है, उस पर पानी फिर जाएगा। साथ ही तू फिजूल ही शत्रु के हाथों में पड़ कर जान से हाथ धो बैठेगा। सातवें मोर्चे को तोड़ कर सातवें सामन्त-राज को जीतना सिर्फ एक मुझ से ही संभव हो सकता है, दूसरा कोई घोड़ा यह काम नहीं कर सकता है। क्या यह बात तुम को मालूम नहीं?" ऐसा कह कर वह उदास हो गया।

लेकिन उदास होकर भी वह चुप नहीं रहा। वीरवर्मा को पास बुला कर फिर कहने लगा—"ओ शूर-शिरोमणि सेनापति, उस सातवें शत्रु-राज को पकड़ने वाला घोड़ा मेरे सिवा और दूसरा नहीं हो सकता—यह समझ लो! अब तक मैंने जो काम किया है, उसे व्यर्थ न कर देना! परिस्थिति कैसी भी क्यों न हो, हमें धीरज और साहस कभी नहीं छोड़ना चाहिए। मुझे जहाँ चोट लगी है, उस पैर में पट्टी बाँध दो, मेरा घाव जल्द भर जाएगा।"

"ओ वीर सेनापति! खूब याद रखो—यद्यपि बाण लगने के कारण मैं घायल हो गया हूँ, फिर भी मुझसे बढ़ कर दूसरा कोई घोड़ा तुम्हारे पास नहीं! मुझे छोड़ो मत, मुझ पर विश्वास करके मेरे घाव को चङ्गा करने का उपाय करो। फिर मुझे लेकर रण-क्षेत्र में पहुँचो!"

फौरन वीरवर्मा पंचकल्याण के पैर में पट्टी बाँध कर उसके उपचार में लग गया। थोड़ी ही देर में पंचकल्याण उठ खड़ा हुआ,

और सेनापति उस पर सवार होकर लड़ाई के मैदान में चला गया। पंचकल्याण बिजली की तरह चमकता आ रहा था! जाते ही उसने सातवें मोर्चे को तोड़ दिया और मोरचा टूटते ही वीरवर्मा ने सातवें सामन्त-राज को पकड़ कर बन्दी बना लिया! इस प्रकार उस युद्ध में वीरवर्मा सम्पूर्ण-रूप से विजयी हुआ।

फिर बन्दी बने हुए उन सातों सामन्त-राजों को सेना के साथ लेकर सेनापति वीरवर्मा काशीराज के सामने उपस्थित हुआ। पंचकल्याण के रूप में रहने वाले भगवान बोधिसत्व भी वहाँ आए, आकर उन्होंने राजा से कहा—'महाराज, ये सातों सामन्त तुम्हारे साथी राजा हैं! इनकी हत्या करने में तुम्हारी कोई शोभा नहीं! उनको अपमानित करना भी उचित नहीं। उचित मार्ग यही है, कि तुम उनसे एक शर्त करा लो। और उस शर्त के अनुसार उन्हें रहने का आदेश दो! अगर ये लोग उस शर्त को मन्जूर कर लें, तो उन्हें छोड़ दो और आदर-मान से विदा कर दो! हे राजा! तुम उदार बनो। धर्म-बुद्धि और न्याय-नीति से राज्य-पालन करो!' भगवान बोधिसत्व ने राजा को यह उपदेश दिया। राजा के सिपाहियों ने उस घोड़े पर से सब साज उतार कर अलग कर दिया। साज उतरते ही पंचकल्याण के रूप में रहने वाले भगवान बोधिसत्व स्वर्ग लोक को चले गए।

काशीराज की आज्ञा से अत्यन्त गौरव-मान के साथ उस घोड़े का श्राद्ध-कर्म किया गया। फिर सातों सामन्त-राज को बुला कर आदर के साथ उन्हें विदा कर दिया। उस दिन से भगवान बोधिसत्व के आदेशानुसार काशी-राज्य में न्याय और धर्म का शासन स्थापित हो गया।
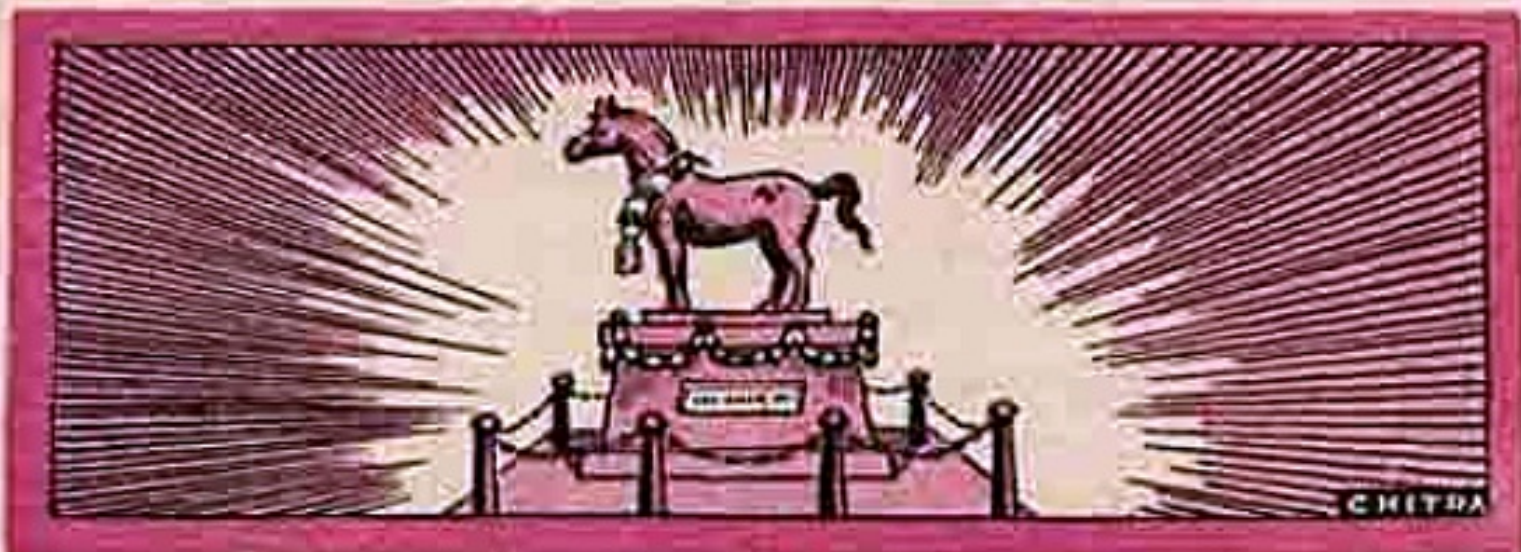
गोदी का लाल

यह उस समय की बात है, जब मेवाड़ पर राणा संग्रामसिंह का राज्य था। राजा का एक विश्वासी अनुचर बनवीर था। बनवीर अनुचर ही नहीं, प्राण प्रिय मित्र भी था। राज-काज संबन्धी बातों में उसका बड़ा हाथ था। धीरे-धीरे राणा ने उसे प्रधान मन्त्री बना दिया।

बनवीर एक गरीब धाय का बेटा था। चूँकि वह राज दरबार में पाला-पोसा गया था, इसलिए बहुत-सी अंदरूनी बातों से उसका सहज ही परिचय हो गया था। यों वह राज कुटुम्ब में भी खूब घुल मिल गया था।

प्रधानता प्राप्त कर लेना बुरा नहीं। लेकिन शुरू से ही बनवीर के मन में एक चोर घुसा हुआ था। वह चोर उसके कानों में बराबर कहता रहता था—'राणा संग्राम सिंह का अब बुढ़ापा आ गया है, वह अब और कितने दिन जीते रहेंगे! किसी-न-किसी तरह से यह राज्य मुझे हथिया लेना चाहिए।' यह संकल्प बहुत दिनों से बनवीर के मनो-राज्य में पनपता आ रहा था।

मृत्यु को समीप जान कर मरण-शय्या पर पड़े राणा संग्रामसिंह ने बनवीर को पास बुलाया और गम्भीरता से कहा—'बनवीर, अब तक तुम मेरा दाहिना हाथ बने हुए थे, उतने से ही उसकी समाप्ति नहीं होगी। तुम्हारे द्वारा हमारे कुटुम्ब की जो भलाई होने वाली है, वह आगे-आगे है। यह देखो अपने गोदी के लाल उदयसिंह को तुम्हारे हाथों में सौंपता हूँ। इसका सर्वेसर्वा अब तुम्ही हो।' यह कह कर संग्रामसिंह ने सदा के लिए अपनी आँखें मूँद लीं।

राज-भवन में अब वह प्रधान राज-पुरुष हो गया है, यह देख कर बनवीर खुशी से फूल उठा। राणा के मरते ही बनवीर उदयसिंह

ठाकुर जयराज सिंह

का संरक्षक बन गया। एक-न-एक दिन वह मेवाड़ का राजा होगा, यही उसकी सब से बड़ी लालसा थी।

दुध-मुँहे बच्चे उस भोले उदयसिंह को भला छल-कपट की दुरभिसंधियाँ क्या मालूम थीं! उदयसिंह एक धाय की गोद में पल रहा था। उस धाय का नाम था 'पन्ना'। पन्ना एक राज-पूत स्त्री थी। राणाओं का नमक खा कर बढ़ी थी, इसलिए राणा के कुटुम्ब पर उसका बड़ा भारी श्रद्धा-भक्ति का भाव था। इसलिए उदयसिंह उसको प्राण समान प्यारा हो गया था। पन्ना का बेटा और उदयसिंह दोनों एक ही उम्र के थे। दोनों को एक समान दूध पिला कर वह पाल रही थी।

'लेकिन जब तक यह उदयसिंह जीवित है, तब तक मेरी इच्छा कैसे पूरी होगी?'— यह बात बनवीर के मन में काँटे की तरह चुभती रहती थी।

आखिर बनवीर ने यह निश्चय किया कि इस बच्चे को उसे किसी-न-किसी तरह खपा ही देना चाहिए। इसलिए उसने उस बच्चे को खुद अपने हाथों मार डालने का संकल्प किया। और गुप्त रीति से उसके लिए उपाय सोचने लगा।

इस कठिन समस्या को हल करने वाला विश्वास योग्य एक ही आदमी उसे दीख पड़ा, वह था 'बारी' नामका एक नाई। उस बारी को बनवीर ने तैयार कर रखा था— उदयसिंह जब सो जाय तो ठीक समय पर आकर मुझ से कहो! 'बारी' ने भी 'बहुत अच्छा' कह कर हामी भर दी थी!

बनवीर के ऐसे राज्याधिकारी की बात वह कैसे टाल सकता था। लेकिन जब से उसने हामी भरी, वह घोर चिन्ता में पड़ गया। 'बारी' ने राणा-परिवार का नमक खाया था। इसलिए उसका रोम-रोम उसकी भलाई की भावना से भरा हुआ था। राजकुमार पर

विपत्ति के इस बादल को छाया हुआ देख कर वह घबरा उठा और दुविधा से उसका हृदय दल-मलित होने लगा।

बनवीर के मन में जब से यह दुष्ट चिंता घर कर गई, तब से उसने राज-पुत्र उदयसिंह को उद्यान-वन में ले जाकर रखा। इस में उद्देश यह था कि उसका वह 'संकल्प आसानी से पूरा हो जाएगा!'

अमावास्या की एक अँधेरी रात में बारी उस दिव्य-भवन के अन्दर पन्ना धाय के पास पहुँचा। और खड़ा होकर रोने लग गया! पन्ना उसी समय दोनों बच्चों को सुला कर बाहर आई थी। 'बारी' को देखते ही वह घबरा उठी! 'इस समय क्यों आए हो 'बारी'—भैया!' बड़ी आतुरता से उसने पूछा।

'क्या कहूँ तुमसे पन्ना दीदी! हमारे राजकुमार के प्राणों पर आपत्ति आ गई है! थोड़ी ही देर में आ रहा है वह दुष्ट.... हाथ में तलवार लिए हुए....!'—इतना कह कर वह व्याकुल हो गया!

'ओ मेरे लाल! कह कर पन्ना ने दीर्घ-साँस छोड़ी और मूर्छित होकर गिर पड़ी! 'बारी' पन्नाने को उठाया और कहा—'दीदी! यह दुख करने का समय नहीं है! हमें राज-कुमार की रक्षा करनी चाहिए! इसकी चिंता पहले करो! वह यमदूत आ ही रहा होगा....!'

पन्ना थोड़ी देर सोचती रही!

इतने में उसका मुँह बिजली की तरह चमक उठा! वह फौरन उठी और सोए हुए बच्चों के पास पहुँची। अपने बच्चे की फटी-पुरानी पोशाक उतार कर उसने राज-पुत्र उदयसिंह को पहना दी। और एक टोकरी में कुछ पुराने कपड़े डाल कर उसमें राज-पुत्र को सुला दिया। फिर झट-पट उसे 'बारी' के माथे पर रख कर धीरे से बोली—'बारी भैया, देखो! इस टोकरे में सोया हुआ है

सका! सोए हुए अपने बच्चे के पास जाकर पन्ना ने उसे गोदी में उठा लिया और चूमते हुए बोली 'लाल, मेरे रत्नों का पहाड़.....! मेवाड़ के राणाओं के अन्न-जल से मेरा यह शरीर पला था, और इसके ऊपर राजकुमार की रक्षा का भार आ पड़ा था! इसीलिए आज तुम्हारे बलिदान की जरूरत आ पड़ी! तुम्हारी रुधिरधारा से मेवाड़ राज-वंश का वृक्ष हरा-भरा होने जा रहा है!'—कह कर वह अविरल अश्रु-धारा बहाने लगी।

आधी-रात हुई। अंधकार गहरा हुआ! उसी समय बनवीर आ धमका। उसके सम्मान के लिए पन्ना उठी और सिर झुका कर खड़ी हो गई।

बनवीर सीधे पालने के पास आकर खड़ा हुआ और कुशल-प्रश्न करने लगा—'पन्ना राजकुमार सुकुशल तो है न?' लेकिन पन्ना चुप रही! क्रूर, कापुरुष, निर्दय और स्वार्थान्ध बनवीर ने कटारी उठाई और राक्षसी उल्लास से सोए हुए बच्चे की छाती में भोंक दी! बच्चे के मुँह से 'कें' की एक चीख निकली और वह सदा के लिए ठण्डा हो गया!

फिर वह दुष्ट बनवीर फौरन वहाँ से भाग खड़ा हुआ। बच्चे की चीख सुन कर लोग दौड़ कर वहाँ आ गए और पूछने लगे—

राजकुमार; सीधे इसे ले जाओ अमुक गाँव में और 'अरहर' नामक व्यापारी के हाथ में सौंप दो!' और उसने झट-पट बारी को विदा कर दिया।

'बारी' के जाते ही देवी पन्ना ने अपने बच्चे को राज-पुत्र की पोशाक से आच्छादित कर दिया। फिर वह सोचने लगी—'अब आए, जो आना चाहे! और करे जो करना चाहे!! मैंने राजा का जो नमक खाया था, उसकी कीमत चुका दी! राजकुमार के प्राणों की रक्षा हो गई, मेरा ऋण चुक गया!' लेकिन माता हृदय स्थिर नहीं रह

'यह क्या हुआ!' कमरा रक्त से लथ-पथ हो रहा था और उसमें बेहोश पड़ी लोट रही थी पन्ना!! लोगों ने उसे होश में लाने का उपचार किया। आखिर पन्ना ने आँखें खोलीं! लोगों ने खोद-खोद कर प्रश्न करना शुरू कर दिया—'यह सब क्या है?'

उदार-हृदया पन्ना को चाहिए थी राज कुमार की रक्षा। वह हो चुकी थी। इसलिए उसने कहा—'मैं कुछ नहीं कह सकती—वह सब क्या हुआ!'

यह खबर सारे नगर में फैल गई। पन्ना के लिए लोग रोने-कलपने लग गए। कहीं यह रहस्य किसी को मालूम न हो जाए, इसलिए बनवीर ने पन्ना को नगर से भगा दिया।

इससे क्या होता जाता था! राजकुमार उदयसिंह तो उस व्यापारी के घर सुरक्षित रूप में बढ़ रहा था। मेवाड़ से निकाले जाने पर पन्ना भी उसी व्यापारी के घर आ पहुँची और काम करने लगी। वहाँ फिर राजकुमार की सेवा-टहल करने का मौका उसे मिल गया। इस बात से पन्ना की आत्मा को बड़ी भारी तृप्ति हासिल हुई।

कुछ समय के बाद बनवीर के पाप का घड़ा फूटा। उसने जो षड्यन्त्र रचा था, सब को मालूम हो गया। प्रजा उसके विरुद्ध खड़ी हो गई और सब लोगों ने मिल कर उसे फांसी पर लटका दिया।

उसके बाद पन्ना के हाथों में पलने वाले राजकुमार उदयसिंह की खोज हुई और उसे राज-सिंहासन पर बिठा दिया गया। पन्ना जब तक जीती रही, उदयसिंह की देख-भाल करती रही।

पन्ना का त्याग अद्भुत था। राजस्थान के इतिहास में उसका पवित्र-नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ है! जिसकी स्मृति आज तक बनी हुई है!

पुराने जमाने में किसी समय यशोवर्मा काश्मीर देश का राजा था। फैसला देने में उसके समान न्यायी और धर्मात्मा राजा उस समय दूसरा कोई नहीं था।

उस समय ब्राह्मणों में किसी के साथ कोई अन्याय हुआ, तो वे राज-दरबार में आ कर मरणान्तक उपवास शुरू कर देते थे। यह देख कर राजा फौरन बाहर आ जाता था, और जाँच-पड़ताल करके पहले उनका इन्साफ़ कर देता था, फिर किसी दूसरे काम में हाथ लगाता था।

एक दिन एक ब्रह्मण आया। उस समय राजा भोजन करने जा रहा था। लेकिन उसको देख कर उसने कहा—'कहिए! आप की क्या शिकायत है?"

यह सुन कर वह ब्रह्मण बोला—'महाराज! देश-विदेश घूम कर मैंने सोने के सौ सिक्के जमा किए थे। आपके शासन की तारीफ़ सुन कर जन्म-भूमि की ओर लौटा हूँ। रास्ते में चोरों का कहीं नाम भी नहीं था। बहुत आनन्द से आ रहा था। कल शाम को लहनपुर गाँव में पहुँचा! थका-माँदा था, इसलिए पेड़ के नीचे एक कुएँ पर लेट रहा। सभी मुहरें थैली में रख कर मैंने कमर में बाँध ली थी।

'सबेरे उठा, तो देखता क्या हूँ कि, कमर से थैली खिसकी हुई है और सिक्के सब गायब हैं। जमीन पर सिर्फ़ एक सिक्का पड़ा हुआ मिला। वे सिक्के सब कुएँ में गिर गए थे। मैं भी उस कुएँ में गिर कर मरने को तैयार हो गया। लेकिन लहनपुर गाँव के सब लोग मेरा रोना सुन कर दौड़ आए और गिरने से पहले मुझे पकड़ लिया।

'तब उन लोगों में से एक धीर-पुरुष ने कहा—'अगर कुएँ में गिरे तुम्हारे सिक्के

मनोहरलाल

मैं निकाल दूँ, तो तुम मुझे क्या दोगे?' उसकी यह बात सुन कर मैं बहुत ही प्रसन्न हो उठा। मुझे उस समय कुछ नहीं सूझा। इसलिए मैंने कह दिया—'भाई! मेरा सर्वस्व जाने कहाँ गायब हो गया है। अगर तुम उसे निकाल सको तो निकाल लाओ और; तुम्हारी जो इच्छा हो उसमें से मुझे दे देना।'

"फौरन वह आदमी कुएँ में उतरा, और कुछ देर के बाद सिक्के लेकर वह बाहर आ गया और बोला—'तुमने कहा था न, कि अगर मैं सिक्के निकाल लाऊँ तो, मेरी जो इच्छा हो, उस में से तुम्हें दे दूँ! अब मेरी इच्छा है, कि तुम इनमें से सिर्फ दो सिक्के ले लो।

"ऐसा कह कर उसने सिर्फ दो सिक्के मुझे दिए और बाकी सब खुद ले लिए। यह काम मुनासिब नहीं है—मैंने इस पर उस के साथ तर्क-वितर्क किए, लेकिन वहाँ जमा हुए सब लोग मेरी निन्दा करते हुए कहने लगे—'यशोवर्मा के राज्य में जितनी खोपड़ियाँ, उतनी बातें! तुम्हारी ही बात पर तो उसने ऐसा किया है! इसके लिए अब तुम्हें चीं-चपड़ करने का कोई हक नहीं।"

इस प्रकार उस ब्रह्मण ने अपनी राम-कहानी सुना कर कहा—"महाराज! मैंने जिस उद्देश से उसके साथ बात की, उसका उलटा अर्थ लेकर उसने मेरी गाढ़ी कमाई हड़प ली। इन सब बातों की जड़ में, मेरे विचार से, आप के इन्साफ़ करने का ढंग ही दोषी है। अब आप इसका फैसला कीजिए। और जब तक आप फैसला नहीं करते, मैं आप के दरबार में मरणान्तक-उपवास करता रहूँगा!'

'उस धनापहारी का कुल-शील और नाम-धाम तुम्हें मालूम है?' राजा ने उस ब्रह्मण से पूछा—"वह सब मुझे कुछ भी मालूम नहीं महाराज! मुहँ देखने से मैं उसे

पहचान सकता हूँ, बस, सिर्फ इतना ही।"

दूसरे दिन राजा के सिपाही लहनपुर गाँव में पहुँचे और वहाँ के सब आदमियों को राज-दरबार में ले आए। उस ब्राह्मण ने धनापहारी व्यक्ति को पहचाना। महाराज यशोवर्मा ने सब बातें साफ़-साफ़ बयान करने की आज्ञा दी। ब्राह्मण ने राजा से जो कुछ कहा था, ठीक वैसा ही बयान उस आदमी ने भी दिया। अंत में उस आदमी ने कहा–'मैंने ब्राह्मण के कहने से ही सब कुछ किया था। अब आप जैसा उचित समझें, फ़ैसला दें।'

यह सुनकर, वहाँ जो लोग जमा थे किसी की समझ में नहीं आया कि उस आदमी का कुसूर क्या है! इस लिए सब लोग राजा का फ़ैसला सुनने को उत्सुक हो उठे।

दोनों की बातें सुन कर राजा कुछ देर मौन रह गया। इसके बाद उसने फ़ैसला सुनाया—'इन सिक्कों का स्वामी असल में यह ब्राह्मण है। इस लिए इसे अंठानवे सिक्के दिए जाएँ, और दो सिक्के उस आदमी को मिलें जिसने उन्हें कुएँ से निकाला है।"

इस के बाद महाराज यशोवर्मा ने सबों को समझा कर कहा—"ब्राह्मण ने यही कहा था न, कि तुम्हारी जो इच्छा हो, उतना मुझे दे देना। इसमें उसका उद्देश्य यही था, कि जो मुनासिब हो, उसे मिले। कुएँ से निकालने वाले की मेहनत की मजूरी में उसके अंठानवे सिक्के चले जाएँगे, ऐसा सोच कर तो उसने नहीं कहा था। कुएँ से सिक्के निकालने वाले आदमी ने उसकी बाहरी बातों को पकड़ा, उसके मन की बातों को नहीं। अतएव धर्म धर्म का सूक्ष्म-विचार करने से और ब्राह्मण का असल उद्देश क्या था, इसको पकड़ने से, यही उचित जान पड़ता है, कि दो सिक्के यह आदमी ले सकता है; बाकी अंठानवे सिक्के ब्राह्मण के ही होंगे–!"

मेरे बराबर सुंदरी कौन ?

पहले के जमाने में फीरोजशाह नामक एक बादशाह था। उसकी बेगम का नाम था गुलनार! वह बेमिसाल सुन्दरी थी। गुलनार का सौंदर्य कैसा था— इसका वर्णन किसी के मुख से नहीं हो सकता था।

गुलनार का शारीरिक सौंदर्य ही अवर्णनीय नहीं था, उसका विहार-स्थल, और रङ्ग-महल भी वैसा ही अपूर्व और अपरूप वैभव से से भरा हुआ था। सफेद संगमरमर से बना और रत्नों से जड़ा वह भवन था, जिसमें भोग-विलास की सामग्रियाँ उमड़ी पड़ रही थीं। उनकी शोभा का वर्णन कौन करे!

इतनी धन-संपत्ति होने पर भी गुलनार के जीवन में संतृप्ति और आनन्द नहीं था। एक दिन उसने अपना खूब शृङ्गार किया, आदम-कद आईने के पास जाकर अपने अनुपम सौंदर्य की मधुरी का पान करती रही! लेकिन हठात् उसके मन में कोई अभाव उठ खड़ा हुआ और वह अतृप्ति तथा निराशा में पड़ कर सेज पर आकर लेट गई।

कुछ देर के बाद बादशाह रङ्ग-महल में तशरीफ़ लाए। बेगम को चिंतित देख कर उन्होंने कारण पूछा—'गुल्नार, यों उदास क्यों दीख रहे हो? जो चाहिए—माँगो! तुम्हारी हर इच्छा को पूर्ण करने का भार हम पर है!'

ऐसा अभय-दान पाकर गुल्नार धीरे से बोली—'तो बताइए, मेरे ऐसी सुन्दरी को आपने कहीं देखा है?' यह सुन कर बादशाह आश्चर्य में पड़ कर बोला—'सुन्दरी! तू अपनी मिसाल आप ही है!'

इस पर गुल्नार बोली—'ऐसा नहीं! मेरी बराबरी करने वाली संसार में और कोई सुन्दरी है या नहीं?—मुझे खूब जान लेना चाहिए, यही मेरी इच्छा है!'

राम स्वरूप निगम

बादशाह हँस पड़ा। इसके लिए उसने सब इन्तजाम कर दिया। लोग जहाँ-तहाँ से बादशाह के रङ्ग-महल में आने लग गए। वे सब-के-सब स्वर्ग-लोक के यक्ष, किन्नर, गन्धर्व और अमर-सौंदर्य से भी श्रेष्ठ सौंदर्य से प्रकाशित हो रहे थे। गुलनार बेगम ने एक-एक कर के सब की परीक्षा की, फिर सब को विदा कर दिया और शयन-मन्दिर में जाकर आईने में अपना रूप देखने लग गई।

फिर मन्द मुसकान से बोल उठी—'लाखों देवता क्यों न आ जाएँ, मेरी और मेरे सौंदर्य की बराबरी करने वाला कोई नहीं!!'

मगर वह तृप्ति बहुत देर तक नहीं रही। फिर वही पुरानी चिन्ता उसके मुख पर मंडराने लग गई।

इस बार उसने खुद बादशाह को अन्तःपुर में बुला भेजा, और उसके आने पर बोली—'मेरा हृदय न जाने क्यों अतृप्ति की आग में उबलता ही जाता है।' बादशाह बेगम की चिन्ता को हटा नहीं सका।

इतने में वसंत ऋतु आई, कलियाँ खिलीं, फूलों पर मंडराने वाले भौंरों की गुंजन-ध्वनि शुरू हो गई। राज-उद्यान में कोयल और बुलबुल मङ्गल-गान करने लगीं। ऐसे ही शुभ समय में गुलनार के एक बच्ची पैदा हुई।

उसकी सखियों ने बच्ची को लाकर बेगम के सामने रख दिया। अबकी फिर बेगम ने बादशाह को बुला भेजा। बादशाह के आने पर वह बोली—'अब जाकर मेरी इच्छा पूरी हुई। मेरी बराबरी करने वाली सुन्दरी मुझे आज दीख पड़ी, आज ही मेरा हृदय शांत हुआ! मेरी खूबसूरती की बराबरी करने वाली सारे जहान में यही एक बच्ची है!' कह कर बच्ची को अपनी छाती से लगा कर चूम लिया!

परिवर्तन

कुरुकुन्डा राज्य का राजा तिम्मराज था। वह बहुत उदार और दयालु व्यक्ति था। अपने राज-दरबार में रहने वाले मंत्री, सेनापति, सरदार वगैरह से ही नहीं, दास-दासियों से भी वह बहुत भलमनसाहत से पेश आता था। ऐसे धर्मात्मा महाराज तिम्मराज के दरबार में मोती नामक एक नौकर था। मोती के बाल-बच्चे नहीं थे। खुद और एक पत्नी—बस, इतना ही। घर राजा के दिए हुए धन से भरा था। लेकिन वह उसे भोगता नहीं था। पेट बाँध कर पैसे बचाया करता था।

महाराज तिम्मराज के राज्य में तांबे के सिक्के तो थे ही नहीं, चाँदी के सिक्के भी बहुत कम थे। नौकर-चाकरों को भी वहाँ सोने के सिक्के ही दिए जाते थे। मोती को जो मुहरें मिलती थीं, उन्हें वह प्राणों के समान जमा करता जाता था। इस में उस की स्त्री मुरली का भी पूरा सहयोग था।

जरूरत पड़ने पर दो-चार मुहरें खर्च करने में भी, पति-पत्नी की नानी मर जाती थी। रोज रात को सोने के समय वे अपनी जमा की हुई मुहरों की गठरी अपने सामने रख कर, बड़े जतन से गिनते और रख देते थे। फिर हिसाब करके वे कह उठते—'अरे, आज दो मुहरें खर्च हो गईं! यह कमी कैसे पूरी होगी?'

ऐसे करते-धरते मोती को एक अच्छी बात सूझ गई। फौरन पत्नी को बुला कर उसने कहा—"अजी, सुनो तो सही! क्या मेरे कहे अनुसार करोगी? करो तो, अनायास हम लोग सोने की दीवारें और महल खड़े कर सकते हैं!" यह बात सुन कर मुरली सिर से पैर तक पुलकित हो उठी। यह कैसे

कु. कमला बख्शी

हो सकता है, यह सुनने के लिए वह सामने आकर बैठ गई।

इस पर मोती बोला—'कोई बड़ी बात नहीं, मैं चार रोज के लिए गाँव छोड़ कर कहीं दूसरी जगह चला जाऊँगा। तू हमारे गाँव के धनी-मानियों के पास जाकर व्याकुल हो कर कहना—'मेरे स्वामी को राजा ने कैद कर लिया है! मेरे जीवन का एक मात्र सहारा चला गया है! अब जीऊँ कैसे? मैं तो राह की भिखारिन बन गई; कहीं कोई सहारा नहीं रहा!' इस प्रकार तू लोगों से कह, फिर देख—क्या होता है!

अपने निश्चय के अनुसार दूसरे दिन तड़के ही मोती गाँव छोड़ कर जाने कहाँ चला गया। मुरली गाँव के धनी-मानियों के पास जाकर पति के पढ़ाए हुए पाठ को दुहराने लगी। अब तक जो कभी किसी के सामने नहीं आई थी, वैसी भली-भोली औरत को अपने सामने देख कर धनी-मानी व्यापारियों का दिल पिघल गया और जिससे जो बना उसने दिल खोल कर उसकी साहायता कर दी।

बिना मेहनत के इस तरह आराम की जिन्दगी बिताना मुरली को बहुत भा गया। लेकिन उसे एक बड़ी चिंता हो आई—जिसके यहाँ जाकर वह एक बार माँग लाई है, फिर वह उसके पास कैसे जाएगी? कोई कब तक किसी की साहायता करता जाएगा? अब तक वह गाँव के सब धनियों के पास से साहायता ले चुकी थी।

ऐसी हालत में मोती घूम-फिर कर घर लौटा, और पत्नी के साथ परिस्थितियों पर विचार किया। 'मेरा उपाय सफल हुआ!'—यह सोच कर उसे बड़ी खुशी हुई। इस तरह जो धन उसकी स्त्री ने जमा किया था, उससे कुछ काल तक गुजारा करके, उसने कुछ बचा भी लिया।

'अच्छा ही है! मैं फिर कुछ समय के लिए पिछली बार की तरह गाँव से बाहर चला जाता हूँ!'— मोती ने मुरली से कहा।

मुरली बोली—'अब मैं किसी के पास नहीं जाऊँगी। अगर फिर गई, तो भांडा फूटे बगैर नहीं रहेगा! पहली बार ही कुछ लोग मुझ पर चिढ़ उठे थे; कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कहा—'अगर गुजारा नहीं होता है, तो अपने रिश्तेदारों के पास क्यों नहीं चली जाती हो? कब तक हम तुमको यों पालते रहेंगे?'

'वाह! शाबाश! उस महात्मा ने तो हमें अच्छा उपाय बता दिया है! तो मैं आज ही बाहर जाता हूँ! और तुम रिश्तेदारों के पास एक-एक कर पहुँचती जाओ! रिश्तेदारों की कमी तो है नहीं! सबों के पास जा-जा कर धन जमा कर लो!'— कह कर मोती उसी रोज कहीं चला गया।

आस-पास जितने रिश्तेदार थे, पता लगा-लगा कर, मुरली सबों के पास गई और अपना दुखड़ा रोई! उसको देखते ही लोग सहानुभूति से भर उठे, और उसे ढाढ़स बँधाया! बारी-बारी से एक-एक दिन लोगों ने उसे खिलाया-पिलाया और जाने के समय शक्ति-सामर्थ्य के अनुसार उसे कुछ देकर विदा कर दिया! इस प्रकार बन्धु-बान्धवों के द्वारा मुरली का पालन-पोषण होता रहा। कुछ दिनों के बाद उन लोगों के मन में भी उसके प्रति कुछ अश्रद्धा पैदा होने लगी। और धीरे-धीरे लोग उसको सन्देह की दृष्टि से देखने लग गए।

यह सब देख कर मुरली घर लौट आई। कुछ दिनों के बाद मोती भी वापस आ गया। मोती ने बड़े उत्साह से बातें उठाईं। लेकिन मुरली अत्यन्त विरक्त भाव से उसकी बातों को काटने लगी। यह देख कर मोती ने बड़ी गम्भीरता से कहा—'अरी, तू इतने ही से घबरा उठी है?' अच्छा तो तू अब घर

से बाहर न निकल अब धनवान होने का मार्ग मैं खुद ढूँढ लूँगा ।

इसी रात को जाने कहाँ से और कैसे एक बहुत बढ़िया मोती लेकर वह घर पहुँचा। दूसरे दिन फिर एक लाया, तीसरे दिन और एक! आज मोती, तो कल मूँगा; परसों नीलमणि! इस प्रकार रोज-रोज एक-न-एक अनमोल, अपूर्व, मनोहर जिन्स वह लाने लगा। मुरली को यह सब जादूगरी का खेल जान पड़ा।

रोज रात को घर आने के समय मोती एक-न-एक चीज जरूर लाता और व्यापारियों के हाथ बेचता जाता था। एक दिन जब वे दोनों एक नीलमणि लेकर बाजार में बेचने गए, तो जाने कहाँ से राजा के सिपाही आ धमके, और दोनों को पकड़ कर बन्दी बना लिया। इतना ही नहीं, मोती के घर पर उन्होंने छापा भी मारा। मोती का घर बाहर से बहुत छोटा दीख पड़ता था। लेकिन अन्दर खोद कर देखा गया तो तरह-तरह की धन-सम्पत्ति निकलने लगी। राजा के घर से जो कुछ गया था, सब का सब निकल आया। यह सब लेकर राजा के सिपाही राज-दरबार में पहुँचे। अब क्या था, सारे नगर में बिजली की तरह यह खबर फैल गई कि इसके लिए मोती और मुरली को फाँसी की सजा दी जाएगी। दोनों राजा के सामने खड़े कर दिए गए। वे राजा के चरणों पर गिर पड़े और 'पाहिमाम!' 'पाहिमाम!' करने लगे। भरे दरबार में महाराज तिम्मराज ने यों कहना शुरू किया—"मोती, तुम दोनों ने सारी जिन्दगी अनेक कष्ट उठा कर यह धन जमा किया था। तुम ही दोनों इसे भोगने के अधिकारी हो।" सब धन-राशि को दो गठरियों में बँधवा कर उनके माथे पर रखवा दिया। यह फैसला सुन कर किसी की समझ में कुछ नहीं आया, कि इसका रहस्य क्या है!

सब लोग कहने लग गए—'महाराज तिम्मराज की बुद्धि समझ में आने वाली नहीं!'

दूसरे दिन मुहरें लेकर मोती बाजार में चावल खरीदने गया। लेकिन जिस किसी के पास वह गया, सब ने 'नहीं' कर दिया! जितनी दूकानों पर गया, सब ने यही बात कही। जरूरत की चीजें बाजार में न मिल सकीं। अब वह क्या करे? आस-पास के गाँवों में जाकर देखा, वहाँ भी वही बात।

यों मोती का जीवन महा संकट मय हो गया। अब उसकी आँखें खुलीं! और उसे तिम्मराज की बातों का अर्थ मालूम हुआ। फौरन उसने अपने सभी गड़े हुए धन निकाल डाले! बन्धु-बान्धवों के यहाँ से मुरली ने जो धन जमा किए थे, सब मुरली के द्वारा एक-एक कर लौटा दिया! अपने नगर में भी जो धन जमा किए थे सब आग्रह पूर्वक लौटा दिए। राज-खजाने से जो कुछ चुराया था, सब-का-सब लौटा दिया! अब मोती एक-दम बदल गया था! उसे मालूम हो गया कि धन का उपयोग जीवन-यापन में एक साधन मात्र हो सकता है! सिर्फ धन पैदा करने के लिए हम पैदा नहीं हुए हैं...! यह दिव्य-मन्त्र उसके मन में अच्छी तरह गड़ गया।

'अरे! मैंने अपना समस्त जीवन व्यर्थ कर दिया! जिसका ओर-छोर कोई न हो, ऐसे अपार-लोभ में पड़ कर मैं सब-कुछ भूल गया और 'दिन-पति लाभ-लोभ अधिकाई!'—की तरह मेरा लोभ कम होने के बजाय बढ़ता ही गया। मन को निमिष मात्र के लिए भी कभी तृप्ति नहीं मिली। अपनी दुराशा-भरी आशा की पूर्ति के लिए मैंने अपनी पत्नी के जीवन को भी नष्ट कर डाला और जिसने कभी बाहर पैर नहीं रखा था, उसे अच्छे-बुरे सभी स्थानों में भटका कर नाना घाट का पानी पिलाया! इतना करके मुझे मालूम हुआ

कि धन मूल्य और का प्रयोजन क्या है !’

‘अब मैं अपने लाभ के लिए किसी पर कोई भार नहीं डालूँगा ! किसी को नहीं सताऊँगा ! बित्ता-भर पेट के लिए मुझे चाहिए ही कितना ! महा दयालु मेरे स्वामी ! मेरी जरूरत के मुताबिक मुझे देते ही आए हैं, उससे तृप्त न होकर मैं कैसी लालसाग्नि में पड़ गया—ओह ! यह ज्वाला मुझे किस प्रकार जलाए जा रही है !’

इस तरह आत्म-ग्लानि, अनुताप और घोर संताप में जलता हुआ वह अपने घर लौटा और निश्चेष्ट होकर बैठ गया ! धन जमा करने की धुन हटते ही मोती के मनसे धन की लालसा मिट गई। और धन की ममता मिटते ही उसका मन अद्भुत ज्ञान-प्रकाश से भर गया ! फिर वह आनन्द से पुलकित हो उठा।

इतने में राजा के दूत वहाँ आ पहुँचे। लेकिन इस बार वे पति-पत्नी को बाँधने नहीं आए थे। वे लोग इस बार अपने साथ दिव्य भोजन पदार्थ लेकर आए थे। यह देख कर मोती और मुरली के हर्ष की सीमा न रही।

उस दिन से मोती और मुरली को अपने घर में खाना पका कर खाने का बहुत कम मौका मिलने लगा। यह क्या ! रोज दोनों वक्त राज-भवन से उनके लिए भोजन पहुँचने लग गया। इसके अलावा महीना खतम होते-होते मोती का वेतन उसके घर पहुँच जाता था। अब उसके लिए कमी किस बात की रह गई। अब धन जमा करने की जरूरत ही उनके लिए नहीं रह गई थी। इसलिए मोती और मुरली अपने महाराज के लिए ही रात-दिन परिश्रम करते थे, और कृतज्ञ हृदय से संतोष और सुख पूर्वक जीवन बिताने लगे। मोती का यह परिवर्तन राजा और प्रजा के लिए अत्यन्त आह्लादकारी सिद्ध हुआ।

रंगीन चित्र-कथा, चौथा चित्र

अब गंगू ने एक बढ़िया तमाशा किया। अच्छी तरह वेश बदल, जिससे कोई पहचान न सके, वह राक्षस के घर में जा पहुँचा। पहुँचा तो सही! लेकिन वहाँ जो अप्सरा थी, उसने इस नए लड़के को अन्दर नहीं जाने दिया और कहा—'लड़के! देखो— विश्वास करने का समय नहीं दीख पड़ता! कल-परसों की ही बात है...तुम्हारी तरह ही एक लड़के को मैंने दया करके जगह दी, तो वह धोखा देकर मेरे मालिक की सोने की मुर्गी को उठा ले गया!' वह और कुछ कहने जा रही थी कि इतने में गरजता हुआ राक्षस-राज आ गया। दयावती उस अप्सरा ने झट-पट उसे कहीं गुप्त-स्थान में छिपा दिया। 'आदमी की गन्ध...! आदमी की गन्ध....!!'—कहते हुए ज्वाला-मुख गरज उठा। औरत उसे समझा-बुझा कर खिलाने लगी। खाना खा लेने के बाद वह बोला—'मेरे धन की थैलियाँ कहाँ हैं?' औरत ने कुछ खाली थैलियाँ लाकर उसके सामने रख दीं। 'बरसाओ—! सोना की वर्षा करो....!!'—कहते हुए उसने खाली थैलियों को उलट कर पकड़ लिया। बस! चम-चमाते हुए तरह-तरह के चाँदी और सोने के सिक्के बेशुमार बरसने लग गए!

उन थैलियों से इतने सिक्के बरसे कि एक पहाड़ ही खड़ा हो गया! जग-मग करती वह धन-राशी आँखों को चौंधियाने लगी! ऐसा मनोहर-सौंदर्य देखते और आनन्दानुभूति में गोता लगाते राक्षस-राज सो गया।

गंगू यह सब गौर से देख रहा था। वह चुप-चाप उठा और आहिस्ते-आहिस्ते उन अद्भुत थैलियों को उठा कर चमपत हो गया! इधर गंगू की माँ उसकी राह देख रही थी। 'बेटा उतना धन लाया है!' यह देख कर उसके आनन्द का पार नहीं रहा। वह अपने पुत्र को समझाने लगी—'बाबू! अब फिर कभी उस राक्षस के भवन में न जाना!—जान पर आफ़त आएगी!'

लेकिन गंगू की दृष्टि तो उस राक्षस-राज पर ही गड़ी हुई थी। 'उसे किस प्रकार जीता जाए....!' यही एक भरी धुन उसके मन में समाई हुई थी!

चारों ओर चहल कदमी

एक भिखारी किसी के घर गया। उस घर का मालिक बड़ा ही कन्जूस था। भिखारी ने पद्य पढ़े! 'यह पद्य तो मुझे भी आते हैं!' उसने कहा। भिखारी ने अश्लोक पढ़े घर वाले ने भी पढ़े! फिर भिखारी ने कुछ जादूगरी कर दिखाई, घर के मालिक ने भी जादूगरी कर दिखाई! भिखारी ऊब गया और बोला—'बाबूजी! आप तो सभी विद्या में निपुण हैं, देख कर बड़ी खुशी हुई। लेकिन आप एक काम नहीं कर सकते हैं, मैं भीख माँग सकता हूँ, क्या आप माँग सकते हैं?' घर का मालिक लजा गया और एक पैसा देकर उसने उसे विदा कर दिया।

एक गरीब आदमी अपने बुद्धि-बल से तरक्की करता हुआ आई. सी. एस. पास हुआ। उसके बँधु-बांधों में कोई बड़े ओहदे पर नहीं था। इसलिए वह उनसे नफ़रत करता था। यह देख कर उसके दोस्त-मित्र उसकी हँसी उड़ाने लगे! सहन न करके एक दिन वह एक ज्ञानी के पास पहुँचा। उसने कहा—'अरे मूढ़! बड़े हाथी को बाँधने के लिए घ.स पात से ऐंठ कर रस्से बन ए जाते हैं! अनाज की फसल के बोझ उठाने के लिए भी उसी कि जरूरत पड़ती है! इसलिए इन सब बातों की ओर ध्यान देने की जरूरत नहीं!' यह बात उसकी समझ में आ गई और वह अपने बँधु-बांधुओं के साथ मिल कर रहने लगी।

एक बार विश्व-विज्ञा समिति ने घोषित किया कि अत्यन्त प्रसनुसनिए पेशे को इनकी ओर से ईनाम मिलेंगे। राजा, वीर, पण्डित होड़ में खड़े हुए समिति ने पण्डितों का ही सम्मान किया। राजाओं ने इसे 'अन्याय!'—कहा राजाओं का अपने राज्य में ही सम्मान है। लेकिन पण्डित जहाँ जाते हैं पूजा होती है!'—समिति ने कहा।

'तो क्या वीर पूजा मामूली बात है?' योद्धाओं ने पूछा। इसका समाधान समिति ने यों किया—'बुढ़ापे में वीरों का सम्मान कम हो जाता है। लेकिन पण्डित बूढ़े होने पर भी सम्मान पाते हैं!'

फोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

फरवरी १९५५ :: पारितोषक १०)

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें ।

ऊपर के फोटो फरवरी के अङ्क में छापे जाएँगे। इनके लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर-संबन्धित हों। परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिख कर १० दिसम्बर के अन्दर ही निम्न-लिखित पते पर भेजनी चाहिए।

फोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता
चन्दामामा प्रकाशन
वडपलनी :: मद्रास-२६

जनवरी - प्रतियोगिता - फल

जनवरी के फोटो के लिए निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं। इनके प्रेषकों को १०) का पुरस्कार मिलेगा।

पहला फोटो : सन तुलन   दूसरा फोटो : थन तुलन

प्रेषक :- ब्र. दीनानाथ, ५ वी श्रेणी गुरुकुल कांगड़ी, हरद्वार-सहारनपुर

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ प्रेषक के नाम सहित दिसम्बर के चन्दामामा में प्रकाशित होंगी। उक्त अंक के प्रकाशित होते ही पुरस्कार की रकम भेज दी जाएगी।

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press Ltd., Madras 26, and Published by him for Chandamama Publications, Madras 26. Controlling Editor: SRI 'CHAKRAPANI'

Photo by B. M. Agashe

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

यहाँ हैं हम!

प्रेषिका
कु. इन्दिरा रा. मंजेश्वर, जलगाँव

CHANDAMAMA (Hindi) DECEMBER 1953 Regd. No. M. 5452

रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र—2